॥ श्री सुधर्मास्वामीने नमः ॥

अहो ! श्रुतम् - स्वाध्याय संग्रह [४]

भाष्यत्रयम्

[गाथा और अर्थ]

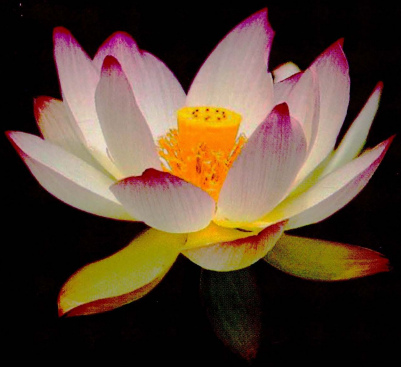

—: प्रकाशक :—

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

साबरमती, अहमदाबाद

॥ श्री सुधर्मास्वामीने नमः ॥

अहो ! श्रुतम् - स्वाध्याय संग्रह [४]

भाष्यत्रयम्

[गाथा और अर्थ]

-: कर्ता :-
आ.श्री देवेन्द्रसूरिजी

-: संकलन :-
श्रुतोपासक

-: प्रकाशक :-
श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार
शा. वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन
हीराजैन सोसायटी, साबरमती, अमदावाद-३८०००५
फोन : ९४२६५८५९०४
E-mail : ahoshrut.bs@gmail.com

प्रकाशक : **श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार**

प्रकाशन : संवत २०७४, द्वि.ज्येष्ठ सुद-५
वैराग्यदेशनादक्ष प.पू.आ.भ.श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के दीक्षादिन पर अर्पण...

आवृत्ति : प्रथम

ज्ञाननिधि में से

पू. संयमी भगवंतो और ज्ञानभंडार को भेट...

गृहस्थ किसी भी संघ के ज्ञान खाते में

२० रुपये अर्पण करके मालिकी कर सकते हैं ।

प्राप्तिस्थान :

(१) सरेमल जवेरचंद काईनफेब (प्रा.) ली.
672/11, बोम्बे मार्केट, रेलवेपुरा, अहमदाबाद-380002
फोन : 22132543 (मो.) 9426585904

(२) कुलीन के. शाह
आदिनाथ मेडीसीन, Tu-02, शंखेश्वर कोम्पलेक्ष, कैलाशनगर, सुरत
(मो.) 9574696000

(३) शा. रमेशकुमार एच. जैन
A-901, गुंदेचा गार्डन, लालबाग, मुंबई-12.
(मो.) 9820016941

(४) श्री विनीत जैन
जगद्गुरु हीरसूरीश्वरजी जैन ज्ञानभंडार,
चंदनबाला भवन, 129, शाहुकर पेठ पासे, मीन्ट स्ट्रीट, चेन्नाई-1.
(मो.) 9381096009, 044-23463107

(५) शा. हसमुखलाल शान्तीलाल राठोड
7/8, वीरभारत सोसायटी, टीम्बर मार्केट, भवानीपेठ, पूना.
(मो.) 9422315985

मुद्रक : **किरीट ग्राफिक्स**, अहमदाबाद (मो.) ९८९८४९००९१

श्री चैत्यवंदन भाष्य

वंदित्तु वंदणिज्जे, सव्वे चिईवंदणाइ सुवियारं;
बहु वित्ति-भास-चुण्णी, सुयाणुसारेण वुच्छामि ॥ १ ॥

वंदन करने योग्य सर्वज्ञो को वंदन करके, अनेक टीका भाष्य चुर्ण्णि और आगम के अनुसार, चैत्यवंदन आदि का (सुविचार) व्यवस्थित विचार कहता हूं ॥१॥

दहतिग-अहिगम पणगं, दुदिसि-तिहुग्गह-तिहा उ वंदणया;
पणिवाय-नमुक्कारा, वन्ना सोल-सय-सीयाला ॥ २ ॥

दशत्रिक, पांच अभिगम, दो दिशाएँ, तीन प्रकार के अवग्रह, तीन प्रकार के वंदन, प्रणिपात, नमस्कार, सोलह सौ सुडतालीश अक्षर ॥२॥

इगसीई सयं तु पया, सगनउई संपयाउ पण दंडा;
बार अहिगार चउ वंदिणिज्ज, सरणिज्ज चउह जिणा ॥३॥

एकसो एक्यासी पद, सत्तानवें संपदाएँ, पांच दंडक, बारह अधिकार, चार वंदन करने योग्य, एक स्मरण करने योग्य, चार प्रकार के जिनेश्वर भगवंत ॥३॥

चउरो थुइ निमित्तट्ठ, बार हेउ अ सोल आगारा;
गुणवीस दोस उस्सग्ग, माण थुत्तं च सगवेला ॥ ४ ॥

चार स्तुतियाँ, आठ निमित्त, बारह हेतु, सोलह आगार, उन्नीस दोष, काउस्सग्ग का प्रमाण, स्तवन, सात वार ॥४॥

दस आसायण-चाओ, सव्वे चिईवंदणाइ ठाणाइं;
चउवीस दुवारेहिं, दुसहस्सा हुंति चउसयरा ॥ ५ ॥

दस आशातनाओं का त्याग, चौवीस द्वारों को लेकर चैत्यवंदन के सर्व स्थान दो हजार चुम्मोत्तर (२०७४) होते है ॥५॥

तिन्नि निसीही तिन्नि उ, पयाहिणा तिन्नि चेव य पणामा;
तिविहा पूया य तहा, अवत्थ-तिय-भावणं चेव ॥ ६ ॥

तीन निसीहि, तीन प्रदक्षिणा, तीन प्रणाम, तीन प्रकार की पूजा (और) तीन अवस्थाओं का चिंतन करना ॥६॥

तिदिसि निरिक्खण-विरइ,पयभूमि-पमज्जणं च तिक्खुत्तो;
वन्नाइ-तियं मुद्दा, तियें - च तिविहं च पणिहाणं ॥ ७ ॥

तीन तरफ की दिशाओं में देखना नहीं, तीन बार पैर की जमीन की प्रमार्जना करना,. वर्णादिक तीन, तीन मुद्राएँ, और तीन प्रकार के प्रणिधान ॥७॥

घर-जिणहर-जिणपूआ, वावारच्चायओ निसीहि-तिगं;
अग्ग-द्वारे मज्झे, तइया चिइ-वंदणा-समए ॥ ८ ॥

मुख्यद्वार पर, मध्यमें और तीसरी चैत्यवंदन के समय (अनुक्रम से) घर, जिनमंदिर और जिनपूजा की (द्रव्य) प्रवृत्ति के त्याग को लेकर तीन प्रकार की निसीहि होती है ॥८॥

अंजलिबद्धो अद्धो-णओ अ पंचंगओ अ ति पणामा;
सव्वत्थ वा तिवारं सिराइ-नमणे पणाम-तियं ॥ ९ ॥

अंजलि पूर्वक प्रणाम, अर्धावनत प्रणाम और पंचांग प्रणाम ये तीन प्रणाम है अथवा (भूमि आदि सभी स्थानों में) तीन बार मस्तक आदि झुकाने से भी तीन प्रकार के प्रणाम होते है ॥९॥

अंगग्गभाव-भेया, पुप्फाहारथुइहिं पूयतिगं;
पंचुवयारा अट्ठो-वयार सव्वोवयारा वा ॥ १० ॥

अंग अग्र और भाव के भेद से पुष्प आहार और स्तुति द्वारा तीन प्रकार की पूजा, अथवा पंचोपचारी अष्टोपचारी सर्वोपचारी पूजा ये (तीन पूजा) है ॥१०॥

भाविज्ज अवत्थतियं, पिंडत्थ पयत्थ रूव-रहियत्तं;
छउमत्थ केवलित्तं, सिद्धत्तं चेव तस्सत्थो ॥ ११ ॥

पिंडस्थ, पदस्थ और रूपरहित अवस्था इन तीन अवस्थाओं का चिन्तन करना । और छद्मस्थ, केवलि और सिद्ध अवस्था उसका (अनुक्रमसे) अर्थ है ॥११॥

न्हवणच्चगेहिं छउमत्थ-वत्थ पडिहारगेहिं केवलियं;
पलियंकुस्सग्गेहि अ, जिणस्स भाविज्ज सिद्धत्तं ॥ १२ ॥

जिनेश्वर परमात्मा को स्नान करवाने वालों द्वारा और पूजा करनेवालों द्वारा छद्मस्थावस्था, प्रातिहार्यो द्वारा कैवलिकावस्था तथा पर्यंकासन और काउस्सग्ग द्वारा सिद्ध अवस्था का चिंतन करना ॥१२॥

उड्ढाहो तिरिआणं, तिदिसाण निरिक्खणं चइज्जहवा;
पच्छिम-दाहिण-वामाण, जिणमुहन्नत्थ-दिट्ठि-जुओ ॥१३॥

जिनेश्वर परमात्मा के मुखपर दृष्टि स्थापित करके ऊपर नीचे और आसपास अथवा पीछे, दाँयी और बाँयी इन तीन दिशाओं में देखने का त्याग करना ॥१३॥

वन्नतियं वन्नत्था-लंबणमालंबणं तु पडिमाइ;
जोग-जिण-मुत्तासुत्ती, मुद्दाभेएण मुद्दतियं ॥ १४ ॥

वर्ण (अजर) अर्थ और प्रतिमा आदि का आलंबन लेना वर्णादि आलंबनत्रिक है । योगमुद्रा, जिनमुद्रा और मुक्तासुक्ति मुद्रा के भेद से मुद्रात्रिक है ॥१४॥

अन्नुन्नंतरिअंगुलि कोसागारेहिंदोहिं हत्थेहिं;
पिट्ठोवरि कुप्पर, संठिएहिं तह जोगमुद्दत्ति ॥ १५ ॥

परस्पर के आंतरो में अंगुलियाँ ड़ालकर कमल के नाल का आकार बनाकर पेट ऊपर कोणी स्थापनकर दो हाथ द्वारा बनी हुई आकार वाली मुद्रा, वह योग मुद्रा है ॥१५॥

चत्तारि अंगुलाइं, पुरओ उणाईं जत्थ पच्छिमओ;
पायाणं उस्सग्गो, एसा पुण होइ जिणमुद्दा ॥ १६ ॥

और जिसमें दो पैर का अंतर आगे चार अंगुल और पीछे कुछ कम हो, वह जिनमुद्रा ॥१६॥

मुत्तासुत्ती मुद्दा, जत्थ समा दोवि गब्भिआ हत्था;
ते पुण निलाडदेसे, लग्गा अन्ने अलग्गत्ति ॥ १७ ॥

जिसमें दोनो हाथ गर्भित रखकर ललाट प्रदेश को स्पर्श किये हुए हो । कुछ आचार्यो के मत से ललाट का स्पर्श किए हुए न हों । उसे मुक्तासुक्ति मुद्रा कहते हैं ॥१७॥

पंचगो पणिवाओ, थयपाढो होइ जोगमुद्दाए;
वंदण जिणमुद्दाए, पणिहाणं मुत्तसुत्तीए ॥ १८ ॥

पंचांग प्रणिपात और स्तवपाठ योगमुद्रा से वंदन जिनमुद्रा से और प्रणिधान मुक्तासुक्ति मुद्रा से होता है ॥१८॥

पणिहाणतिगं चेइअ-मुणिवंदण-पत्थणासरूवं वा;
मण-वय-काएगत्तं, सेस-तियत्थो य पयडुत्ति ॥ १९ ॥

चैत्यवंदन मुनिवंदन और प्रार्थना का स्वरूप अथवा, मन, वचन, काया की एकाग्रता = ये प्रणिधान त्रिक है । शेष त्रिकों का अर्थ सुगम है । इस प्रकार दसत्रिक पूर्ण हुए ॥१९॥

सच्चित्तदव्वमुज्झण-मच्चित्तमणुज्झणं मणेगत्तं;
इग-साडि उत्तरासंगु, अंजली सिरसिअ जिण-दिट्ठे ॥ २० ॥

सचित वस्तुओं का त्याग करना, अचित वस्तु रखना, मन की एकाग्रता, एकशाटक उत्तरासंग, और जिनेश्वर प्रभु के दर्शन होते ही ललाट पर हाथ जोडना ॥२०॥

इअ पंचविहाभिगमो, अहवा मुच्चंति रायचिण्हाईं;
खग्गं छत्तोवाणह, मउडं चमरे अ पंचमए ॥ २१ ॥

ये पांच प्रकार का अभिगम है, अथवा तलवार, छत्र, मोजडी, (जुते) मुगुट और पांचवा चँवर ये राजचिन्ह बाहर रखना चाहिए ॥२१॥

वंदंति जिणे दाहिण, दिसिट्ठिआ पुरिस वामदिसि नारी;
नवकर जहन्न सट्ठिकर, जिट्ठ मज्झुग्गहो सेसो ॥ २२ ॥

दाहिनी ओर खडे रहकर पुरूष और बाँयी ओर खडी रहकर स्त्रियाँ जिनेश्वर परमात्मा को वंदन करे । जघन्य-नौ हाथ, उत्कृष्ट ६० हाथ, शेष-मध्यम अवग्रह होता है ॥२२॥

नमुक्कारेण जहन्ना, चिइवंदण मज्झ दंड-थुई-जुअला;
पण दंड-थुई-चउक्कग, थयपणिहाणेहिं उक्कोसा ॥ २३ ॥

नमस्कार द्वारा जघन्य, दंडक और स्तुति युगल द्वारा मध्यम, पांच दंडक, चारस्तुति, स्तवन और प्रणिधान द्वारा उत्कृष्ट चैत्यवंदन होता है ॥२३॥

अन्ने बिंति इगेणं, सक्क-त्थएणं जहन्न-वंदणया;
तद्दुग-तिगेण मज्झा, उक्कोसा चउहिं पंचहिं वा ॥ २४ ॥

अन्य आचार्य भगवंत कहते है कि एक नमुत्थुणं द्वारा जघन्य, दो या तीन द्वारा मध्यम और चार या पाँच द्वारा उत्कृष्ट (चैत्य) वंदना होती है ॥२४॥

पणिवाओ पंचंगो, दो जाणू करदुगुत्तमंगं च;
सुमहत्थ नमुक्कारा, इग दुग तिग जाव अट्ठसयं ॥ २५ ॥

प्रणिपात पांच अंगवाला है । दो घुटने, दो हाथ, और मस्तक, एक, दो, तीन लेकर एक सौ आठ तक विस्तृत अर्थवाला नमस्कार होता हैं ॥२५॥

अडसट्ठि अट्ठवीसा, नवनउयसयं च दुसय-सगनउया;
दोगुणतीस दुसट्ठा, दुसोल अडनउयसय दुवन्नसयं ॥ २६ ॥

अडसट्ठ, अट्ठावीस एक सौ निन्यान्हवे, दो सौ सत्तानवे, दो सौ ऊनतीस, दो सो साठ, दोसो सोलह, एक सौ अट्ठानवे, एक सो बावन ॥२६॥

इअ नवकार-खमासमण, ईरिअ-सक्कत्थआई दंडेसु;
पणिहाणेसु अ अदुरुत्त, वन्न सोलसय सीयाला ॥ २७ ॥

इस प्रकार, नवकार, खमासमण इरियावहिया, शक्रस्तवादि दंडको में और प्रणिधान सूत्रों में दूसरी बार उच्चारण नहीं किये गये सोलह सौ सेंतालीस अक्षर (वर्ण) होते है ॥२७॥

नव बत्तीस तित्तीसा, तिचत्त अडवीस सोल वीस पया;
मंगल ईरिया-सक्कत्थ याईसु एगसीईसयं ॥ २८ ॥

मंगल, इरियावहिया शक्रस्तव आदि में नौ, बत्तीस, तेंतीस तियालीस अट्ठावीस, सोलह, बीस, एक सौ इक्यासी पद है ॥२८॥

अड्ड नवट्ठ य अट्ठवीस, सोलस य वीस वीसामा;
कमसो मंगल-ईरिया, सक्कत्थयाईसु सगनउई ॥ २९ ॥

क्रमानुसार नवकार, इरियावहिया, शक्रस्तव आदि में आठ, आठ, नव, आठ, अट्ठावीस, सोलह और बीस इस प्रकार कुल सत्तानवे संपदाएँ है ॥२९॥

वण्णड्ड सट्ठि नव पय, नवकारे अड्ड संपया तत्थ;
सग संपय पय तुल्ला, सतरक्खर अट्ठमी दु पया ॥ ३० ॥

नवकार में अडसठ अक्षर, नौ पद, और आठ संपदाएँ है । उसमें सात संपदाएँ पद की तरह की है । और आठवीं सतरह अक्षरों की और दो पदों की है । "नौ अक्षर की आठवी और दो पदवाली छट्ठी (संपदा) इस प्रकार अन्य आचार्य कहते है ॥३०॥

पणिवाय अक्खराईं, अट्ठावीसं तहा य इरियाए;
नवनउअ-मक्खरसयं, दुतीस पय संपया अट्ठ ॥ ३१ ॥

प्रणिपात सूत्र में अट्ठावीस अक्षर है । और इरियावहिया में एकसो निन्यान्हवे अक्षर, बत्तीस पद और आठ संपदाएँ है ॥३१॥

दुग दुग इग चउ इग पण, इगार छग इरिय-संपयाइपया;
ईच्छा इरि गम पाणा, जे मे एगिंदि अभि तस्स ॥ ३२ ॥

इरियावहिया की संपदाओ के दो, दो, एक, चार, पांच, अग्यारह, और छ पद है । इरियावहिया की संपदाओं के प्रारंभ के पद इच्छा० इरि० गम० पाणा० जे मे० एगिंदि० अभि० तस्स० है ॥३२॥

अब्भुवगमो निमित्तं, ओहे-अरहेउ-संगहे पंच;
जीव-विराहणपडिक्कमण भेयओ तिन्नि चूलाए ॥ ३३ ॥

अभ्युगम, निमित्त, सामान्य, और विशेष हेतु, संग्रह ये पांच और चूलिका में जीव, विराधना, और प्रतिक्रमण, के भेद से तीन ॥३३॥

दु-ति-चउ पण पण पण दु, चउतिपयसक्कत्थयसंपयाइपया;
नमु-आइग पुरिसो लोगु अभय धम्मप्पजिणसव्वं ॥३४॥

दो-तीन-चार-पांच-पांच-पांच-दो-चार-तीन-पदो वाली शक्रस्तव की संपदाएँ है । शक्रस्तव की संपदाओं के आदि

पद नमु. आइग. पुरिसो. लोगु. अभय. धम्म. अप्प. जिण. सव्वं. है ॥३४॥

थोअव्व संपया ओह, इयरहेऊ-वओग तद्धेऊ;
सविसेसुवओग सरूव हेउनियसम-फलय मुक्खे ॥ ३५ ॥

स्तोतव्य ओघ और इत्तर हेतु, उपयोग, तद्वेतु, सविशेष, उपयोग, स्वरूपहेतु, निज सम फलद, मोक्ष संपदा ॥३५॥

दो सगनउआ वन्ना, नवसंपय पय तित्तीस सक्कत्थए;
चेइयथयट्ठ-संपय, तिचत्त-पय वन्न-दुसयगुणतीसा ॥३६॥

शक्रस्तव में दो सौ सत्तानवे अक्षर, नौ संपदा, तेंतीस पद है । चैत्यस्तव में आठ संपदा, तियालीस पद, दो सौ उनतीस अक्षर है ॥३६॥

दु छ सग नव तियछ च्चउ-छप्पय चिइसंपया पया पढमा;
अरिहं वंदण सद्धा, अन्न सुहुम एव जा ताव ॥ ३७ ॥

दो, छः, सात, नौ, तीन, छः, चार, और छः प्रकार के पदवाली चैत्यस्तव की संपदाएँ है । और अरिहं, वंदण. सद्धा. अन्न. सुहुम. एव. जा. ताव उसके आदि पद है ॥३७॥

अब्भुवगमो निमित्तं, हेउ इग बहु वयंत आगारा;
आगंतुग आगारा, उस्सग्गावहि सरूवट्ठ ॥ ३८ ॥

अभ्युपगम, निमित्त, हेतु, एक और बहुवचनान्त आगार आगंतुग आगार, कायोत्सर्ग की अवधि, और स्वरूप इस प्रकार आठ (संपदाएँ) है ॥३८॥

नामथयाइसु संपय, पयसम अडवीस सोल वीस कमा;
अदुरुत्त-वन्न दोसट्ठ, दुसयसोल-ट्ठनउअसयं ॥ ३९ ॥

लोगस्स विगेरे (अर्थात) लोगस्स-पुक्खरवर और सिद्धाणं बुद्धाणं इन तीन (सूत्रों) में अनुक्रम से संपदाएँ पद तुल्य (अर्थात्) २८-१६-२० पद और उतनी ही संपदाएँ है। तथा दूसरी बार सूत्रोच्चार के समय नहीं बोले गये अक्षर २६०,२१६ और १९८ है ॥३९॥

पणिहाणि दुवन्नसयं, कमेण सगति चउवीस तित्तीसा;
गुणतीस अट्ठवीसा, चउती-सिगतीस बार गुरु वन्ना ॥४०॥

तीन प्रणिधान सूत्रों में (जावंति चेई०, जावंतकेवि०, जयवीयराय०) अनुक्रम से ३५, ३८ और ७९ अक्षर-कुल १५२ अक्षर है। तथा संयुक्त व्यंजन नवकार में ७, खमासमण में ३, इरियावहिया में १४, शक्रस्तव में ३३, चैत्यस्तवमें २९, नामस्तव में २७, श्रुतस्तवमें ३४, सिद्धस्तवमें ३१, और प्रणिधान सूत्रों में १२ संयुक्त व्यंजन है ॥४०॥

पण दंडा सक्कत्थय, चेइअ नाम सुअ सिद्धथय इत्थ;
दो इग, दो दो पंच य, अहिगारा बारस कमेण ॥ ४१ ॥

शक्रस्तव, चैत्यस्तव, नामस्तव, श्रुतस्तव, और सिद्धस्तव ये पांच दंडक है । (उनमें) अनुक्रमसे २-१-२-२-५ इस तरह अधिकार हैं ॥४१॥

नमु जेअ अ अरिहं लोग सव्व पुक्ख तम सिद्ध जो देवा;
उज्जि चत्ता वेआ, वच्चग अहिगार पढमपया ॥ ४२ ॥

१. नमुत्थुणं २. जेय(अ)अइया सिद्धा, ३. अरिहंत चेइयाणं ४. लोगस्स उज्जोअगरे ५. सव्वलोए अरिहंत-चेइयाणं ६. पुक्खरवरदीवड्ढे ७. तमतिमिर पडलविद्धं ८. सिद्धाणं बुद्धाणं ९. जो देवाणवि देवो १०. उज्जित सेलसिहरे ११. चत्तारिअट्ठ दस दो १२. वेयावच्चगराणं ये बारह अधिकार के १२ प्रथमपद है ॥४२॥

पढम-हिगारे वंदे, भावजिणे बीयए उ दव्वजिणे;
इगचेइय-ठवण जिणे, तइय चउत्थंमि नामजिणे ॥४३॥

प्रथम अधिकार में भावजिनको, दूसरे अधिकारमें द्रव्यजिनको, तीसरे अधिकार में एक चैत्य के स्थापना जिनको, और चौथे अधिकार में नाम जिनको वंदना करता हूं ॥४३॥

तिहुअण-ठवण जिणे पुण, पंचमए विहरमाण जिण छट्ठे;
सत्तमए सुयनाणं, अट्ठमए सव्व-सिद्धथुइ ॥ ४४ ॥
तित्थाहिव-वीरथुइ, नवमे दसमे य उज्जयंत थुइ;
अट्ठावयाइ इगदिसि, सुदिट्ठिसुर-समरणा चरिमे ॥ ४५ ॥

पुनःपांचवे अधिकार में तीन भुवन के स्थापना जिन को वंदना की है । छट्ठे अधिकार में विहरमान जिनेश्वरों को वंदना की है । सातवें अधिकार में श्रुतज्ञान को वंदना की है । आठवें अधिकार में सर्व सिद्ध भगवन्तों की स्तुति है । नौवें अधिकार में वर्तमान तीर्थ के अधिपति श्री वीरजिनेश्वर की स्तुति है । दसवें अधिकार में गिरनार की स्तुति है । अग्यारहवें अधिकार में अष्टापद आदि तीर्थों की स्तुति है । और बारहवें अधिकार में सम्यग्दृष्टि देवों का स्मरण किया गया है । (इनकी स्तुति नहीं) ॥४४॥ ॥४५॥

नव अहिगारा इह ललिअ वित्थरावित्तिमाइअणुसारा;
तिन्नि सुय-परंपरया, बीओ दसमो इगारसमो ॥ ४६ ॥

यहाँ ९ अधिकार श्री ललित विस्तरा नाम की वृत्ति के अनुसार हैं । और दूसरे, दसवें और अग्यारवें में ये तीन अधिकार श्रुतपरंपरा से चले आ रहे हैं ॥४६॥

आवस्सय-चुण्णीए, जं भणियं सेसया जहिच्छाए;
तेणं उज्जिताइ वि, अहिगारा सुयमया चेव ॥ ४७ ॥

आवश्यक सूत्र की चूर्णिमें कहा है कि "शेष अधिकारों को स्वेच्छापूर्वक करने के लिए समझना" जिससे "उज्जित सेल"- विगेरे अधिकार भी श्रुत सम्मत है ॥४७॥

बीओ सुयत्थयाइ, अत्थओ वन्निओ तहिं चेव;
सक्कत्थयंते पढिओ, दव्वारिह-वसरि पयडत्थो ॥ ४८ ॥

दूसरों भी वहीं (आवश्यक चूर्णिमें) पर श्रुतस्तव के प्रारंभ में अर्थ से कहा हैं । शक्रस्तव के बाद में द्रव्य अरिहंत की स्तवना प्रसंग पर साक्षात् शब्दों से हैं । उच्चारा है (बोला है) ॥४८॥

असढाइन्नणवज्जं, गीअत्थ-अवारिअं ति मज्झत्था;
आयरणा वि हु आणत्ति वयणओ सुबहु मन्नंति ॥ ४९ ॥

निर्दोष पुरुषों द्वारा आचरित आचरण वह निर्दोष है । ऐसे आचरण का मध्यस्थ गीतार्थ पुरुष निषेध नहीं करते, लेकिन "ऐसा आचरण भी प्रभु की आज्ञा ही है ।" इस वचन से मध्यस्थ पुरुष, सम्मान देते हैं ॥४९॥

चउ वंदणिज्ज जिण मुणि, सुय सिद्धा इह सुराइ सरणिज्जा;
चउह जिणा नाम ठवण दव्व भाव जिण-भेएणं ॥ ५० ॥

जिन,मुनि,श्रुत और सिद्ध ये चार वंदन करने योग्य हैं । और यहाँ पर देव स्मरण करने योग्य हैं ।

नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ये जिनेश्वरों के भेदों को लेकर चार प्रकार के जिनेश्वर हैं ॥५०॥

नामजिणा जिणनामा, ठवणजिणा पुण जिणिंदपडिमाओ;
दव्वजिणा जिणजीवा, भावजिणा समवसरणत्था ॥५१॥

जिनेश्वर प्रभु के नाम, नाम जिनेश्वर, जिनेश्वर प्रभु की प्रतिमा स्थापना जिनेश्वर, जिनेश्वर परमात्मा के जीव द्रव्य जिनेश्वर, और समवसरण में विराजमान भाव जिनेश्वर ॥५१॥

अहिगय-जिण-पढमथुइ, बीया सव्वाण तइअ नाणस्स;
वेयावच्चगराणं, उवओगत्थं चउत्थथुइ ॥ ५२ ॥

अधिकृत जिनकी प्रथम, सर्व जिनेश्वरों की दूसरी, ज्ञान की तीसरी तथा वेयावच्च करने वाले देवों के उपयोग के लिए (तथा स्मरणार्थे) चौथी स्तुति है ॥५२॥

पावखवणत्थ इरिआइ, वंदणवत्तिआइ छ निमित्ता;
पवयण सुर सरणत्थं, उस्सग्गो इअ निमित्तट्ठ ॥ ५३ ॥

पापों का क्षय करने के लिए इरियावहिया प्रतिक्रमणका, वंदन-वत्तिया विगेर छ निमित्तों का, और शासन देव के स्मरण के लिए काउस्सग्ग करना, इस प्रकार आठ निमित्त हैं ॥५३॥

चउ तस्स उत्तरीकरण-पमुह सद्धाइआ य पण हेऊ;
वेयावच्चगरत्ताइ तिन्नि ईअ हेउ बारसगं ॥ ५४ ॥

"तस्स उत्तरी करण" आदि चार "श्रद्धा" विगेरे पांच और वेयावच्च करना विगेरे तीन, इस प्रकार बारह कारण-साधन हैं ॥५४॥

अन्नत्थयाइ बारस, आगारा एवमाइया चउरो;
अगणी-पर्णिदि छिंदण-बोहि-खोभाइ डक्को य ॥ ५५ ॥

अन्नत्थ इत्यादि बारह और अग्नि पंचेन्द्रिय छेदन, सम्यक्त्व की हानि, और डंख एवमाइ यहाँ से ये चार, इस तरह सोलह आगार है ॥५५॥

घोडग लय खंभाई, मालु-द्धी निअल सबरि खलिण वहू;
लंबुत्तर थण संजई, भमुहंगुलि वायस कविट्ठो ॥ ५६ ॥

अश्व, लता, स्तंभादिक, मंजिल, उद्ध, गाड़ी की बेड़ी भीलडी, लगाम, वधू, लंबावस्त्र, स्तन, साध्वीजी, अंगुलियाँ तथा भवाँ घुमाना कौआ, कोठे के फल ॥५६॥

सिरकंप मूअ वारुणि, पेहत्ति चइज्ज दोस उस्सग्गे;
लंबुत्तर थण संजइ, न दोस समणीण सवहु सड्ढीणं ॥५७॥

मस्तक हिलाना, मूक(गुंगा), मदिरा, बन्दर (कपि) इन दोषो का कायोत्सर्ग में त्याग करना चाहिये । साध्वीजी को लंबुत्तर स्तन और संयती और श्राविकाओं को वधू सहित (चार) दोष नहीं लगते ॥५७॥

इरि उस्सग्गपमाणं, पणवीसुस्सास अट्ठ सेसेसु;
गंभीर-महुर-सद्दं, महत्थ-जुत्तं हवइ थुत्तं ॥ ५८ ॥

इरियावहिय के कायोत्सर्ग का प्रमाण २५ श्वासोच्छ्वास प्रमाण है और शेष कायोत्सर्ग का प्रमाण ८ श्वासोच्छ्वास है । गंभीर और मधुर शब्दवाला तथा महान् अर्थवाला स्तवन होना चाहिए । (५८)

पडिक्कमणे चेइय जिमण चरिमपडिक्कमण सुअण पडिबोहे;
चिइवंदण इअ जइणो, सत्त उ वेला अहोरत्ते ॥ ५९ ॥

मुनिओ को रात्रि और दिन में, प्रतिक्रमण में, दर्शन, गोचरी, संध्या, प्रतिक्रमण, तथा सोने व जागने के समय, इस प्रकार सात बार चैत्यवंदन करने का विधान है ॥५९॥

पडिक्कमणो गिहिणोवि हु, सगवेला पंचवेल इअरस्स;
पूआसु तिसंझासु अ, होइ ति-वेला जहन्नेणं ॥ ६० ॥

प्रतिक्रमण करने वाले गृहस्थ को भी सात बार या पांच बार और प्रतिक्रमण नहीं करनेवाले गृहस्थको प्रतिदिन तीन संध्याकाल की पूजा में जघन्य से तीन बार चैत्यवंदन करना चाहिए ॥६०॥

तंबोल पाण भोयण, वाणह मेहुन्न सुअण निट्ठवणं;
मुत्तु-च्चारं जूअं, वज्जे जिणनाह-जगईए ॥ ६१ ॥

श्री जिनेश्वर परमात्मा के मंदिर के परिसर में तंबोल पेयपदार्थ पीना खाना, पाँव में चप्पल मोजड़ी आदि पहनकर आना, मैथुन करना, निद्रालेना, थूंकना, पेशाब करना, वड़ीनीति(टट्टी), जुआ खेलना निषेध है अर्थात् दस आशातनाओं का निवारण चाहिये ॥६१॥

इरिनमुक्कार नमुत्थुण, अरिहंत थुइ लोग सव्व थुइ पुक्ख;
थुइ सिद्धा वेआ थुई, नमुत्थु जावंति थय जयवी ॥६२॥

इरियावहियं - नमस्कार - नमुत्थुणं - अरिहंत चे० - स्तुति - लोगस्स सव्वलोए - स्तुति - पुक्खरवरदी - स्तुति - सिद्धाणं - वेयावच्चगराणं - स्तुति - नमुत्थुणं - जावंति चेइ० दो, स्तवन और जयवीयराय ॥६२॥

सव्वोवाहि विसुद्धं, एवं जो वंदए सया देवे;
देविंदविंद महिअं, परमपयं पावइ लहुं सो ॥ ६३ ॥

इस तरह जो मानव देवको प्रतिदिन वंदना करता है, वह मानव देवेन्द्रो के समूह द्वारा पूजित सर्व उपाधियों से शुद्ध बना हुआ शीघ्र मोक्षपद प्राप्त करे ॥६३॥

॥ इति प्रथम भाष्य ॥

श्री गुरूवंदन भाष्य

गुरुवंदण-मह तिविहं, तं फिट्टा छोभ बारसावत्तं;
सिरनमणाइसु पढमं, पुण्ण-खमासमण-दुगि बीअं ॥ १ ॥

अब देव वंदन कहने के बाद गुरूवंदन कहा जाता है, वह फेटा वंदन, छोभ वंदन और द्वादशावर्त्त वंदन (आदि) तीन प्रकार के है । उसमें मस्तक झुकाने आदि से प्रथम फेटा वंदन होता है । गुरू को दो खमासमणे संपूर्ण देने से छोभवंदन होता है ॥१॥

जह दूओ रायाणं, नमिउं कज्जं निवेइउं पच्छा;
वीसज्जिओ वि वंदिअ, गच्छइ एमेव इत्थ दुगं ॥ २ ॥

जैसे दूत प्रथम राजा को नमस्कार करके कार्य का निवेदन करता है और उसके बाद राजा द्वारा विसर्जन करने पर भी (राजा द्वारा जाने की आज्ञा मिलने पर भी) पुनः (दूसरी बार) नमस्कार करके जाता है । इसी प्रकार गुरूवंदन में भी दो बार वंदना की जाती है (अर्थात् इसी कारण से गुरू को खमासमणे भी दो दिये जाते है और द्वादशावर्त्त वंदन भी दो बार किया जाता है ।) ॥२॥

आयारस्स उ मूलं, विणओ सो गुणवओ अ पडिवत्ती;
सा य विहि-वंदणाओ, विही इमो बारसावत्ते ॥ ३ ॥

आचारका मूल (धर्म का मूल) विनय है, और वह विनय गुरू की भक्ति रूप है, और वह (गुणवंत गुरू की) भक्ति विधिपूर्वक वंदन करने से होती है, और वह विधि यह (जो आगे कही जाएगी) है, अर्थात् वह विधि द्वादशावर्त्त वंदन में कही जायेगी ॥३॥

तइयं तु छंदण-दुगे, तत्थ मिहो आइमं सयलसंघे;
बीयं तु दंसणीण य, पयट्ठिआणं च तइयं तु ॥ ४ ॥

तीसरा द्वादशावर्त वंदन दो वंदनक द्वारा (दो वांदणे देने के द्वारा) किया जाता है । तथा इन तीन वंदन में प्रथम फिट्टावंदन संघ में संघ को परस्पर किया जाता है । दुसरा छोभवंदन (खमासमणवंदन) साधु-साध्वी को किया जाता हैं । और तीसरा द्वादशावर्त्त वंदन आचार्य आदि पदवीधर मुनिओं को किया जाता है ॥४॥

वंदण-चिइ-किईकम्मं, पूआकम्मं च विणयकम्मं च;
कायव्वं कस्स व ? केण, वावि ? काहेव ? कइ खुत्तो ? ॥५॥
कइ ओणयं कई सिरं, कइहिं व आवस्सएहिं परिसुद्धं ?;
कइ दोस विप्पमुक्कं, किइकम्मं कीस कीरइ वा ॥ ६ ॥

वंदनकर्म, चितिकर्म, कृतिकर्म, पूजाकर्म और विनयकर्म (ये पांच गुरूवंदन के नाम है) वह किसको करने चाहिए ?

कब करना ? कितनी बार करना ? तथा वंदन में अवनत (शिष्य के प्रणाम) कितने ? शीर्षनमन कितने ? और ये गुरूवंदन कितने आवश्यकों द्वारा विशुद्ध किया जाता है ? कितने दोषों से रहित किया जाता है ? तथा कृति कर्म (वंदनक) (वांदणा) किसलिए किया जाता है ? ये ९ द्वार इस वंदन विधि में कहे जायेंगे ॥५॥६॥

पणनाम पणाहरणा, अजुग्गपण जुग्गपण चउ अदाया;
चउदाय पणनिसेहा, चउ अणिसेह-ट्ठकारणया ॥ ७ ॥

गुरु वंदन के पांच नाम, पांच द्रष्टान्त, वंदन के अयोग्य पांच प्रकार के साधु, वंदन के योग्य पांच प्रकार के साधु, चार प्रकार के साधु वंदन न करे, (अर्थात् चार प्रकार के साधुओ के पास वंदन नहि करवाना चाहिये) चार प्रकार के साधु को वंदन करे, वंदन के पांच निषेधस्थान, और चार अनिषेध स्थान तथा वंदन के आठ कारण कहे जायेंगे ॥७॥

आवस्सय मुहणंतय, तणुपेह-पणीस-दोस बत्तीसा;
छगुण गुरुठवण दुग्गह, दुछवीसक्खर गुरु पणीसा ॥८॥

तथा २५ आवश्यक का वर्णन, मुहपत्ति की २५ प्रतिलेखना का वर्णन, शरीर की २५ प्रति लेखना का वर्णन, वंदन के समय टालने योग्य ३२ दोषों का वर्णन, वंदन के छ गुणों का वर्णन, गुरु स्थापना वर्णन, दो प्रकार का

अवग्रह, (गुरु से दूर खडे रहने की मर्यादा), वंदन का सूत्र के २२६ अक्षर, और उस में २५ गुरु अक्षर (जोडाक्षर) का वर्णन, इस प्रकार, ॥८॥

पय अडवन्न छठाणा, छगुरुवयणा आसायण-तित्तीसं;
दुविही दुवीस-दारेहिं चउसया बाणउइ ठाणा ॥ ९ ॥

तथा वंदन का सूत्र में ५८ पद हैं उन्हें दर्शाया जायेगा, वंदन के ६ स्थान (६ अधिकार शिष्य के प्रश्नों के रुपमें) कहेंगे, वंदन के समय गुरु को बोलने योग्य ६ वचन (प्रश्नों के उत्तररुप में) कहेंगे । गुरु की ३३ आशातनाओं का वर्णन, और वंदन की विधि (रात्रि व दिन संबधि) कहेंगे, (इस गाथा में पांच द्धार) इस तरह २२ मुख्य द्वारों के ४९२ स्थान (द्वार के उत्तर भेद ४९२) होते है ॥९॥

वंदणयं[१] चिइकम्मं[२], किइकम्मं[३] पूअकम्म[५] विणय[४] कम्मं;
गुरुवंदण पण नामा, दव्वे भावे दुहाहरणा (दुहोहेण) ॥१०॥

वंदनकर्म, चितिकर्म, कृतिकर्म, विनयकर्म और पूजाकर्म इस प्रकार गुरुवंदन के पांच नाम है । पुनः प्रत्येक नाम ओघसे (सामान्यतः) द्रव्य से और भावसे, दो प्रकार से दृष्टांत जानना ॥१०॥

सीयलय खुड्डए वीर, कन्ह सेवग दु पालए संबे;
पंचेए दिट्ठंता, किइकम्मे दव्व-भावेहिं ॥ ११ ॥

द्रव्य कृति कर्म व भाव कृति कर्म (अर्थात् पांच द्रव्य और पांच भाव गुरु वंदन) के विषय में अनुक्रम से शीतलाचार्य, क्षुल्लकाचार्य, वीरकशालवी और कृष्ण, दो सेवक व पालक और शाम्बकुमार का ये पांच दृष्टान्त है ॥११॥

पासत्थो ओसन्नो, कुसील संसत्तओ अहाछंदो;
दुग-दुग ति दुगणेगविहा, अवंदणिज्जा जिणमयंमि ॥१२॥

पार्श्वस्थ(पाशस्थ) अवसन्न, कुशील, संसक्त और यथाछंद (ये ५ प्रकार के साधु अनुक्रम से) २-२-३-२ अनेक प्रकार के है, और वे जैनदर्शन के विषय में अवंदनीय (वंदन के अयोग्य) कहे गये है ॥१२॥

आयरिय उवज्झाए, पवत्ति थेरे तहेव रायणिए;
किइकम्म निज्जरट्ठा, कायव्व-मिमेसिं पंचण्हं ॥ १३ ॥

आचार्य-उपाध्याय-प्रवर्तक-स्थविर तथा रात्निक इन पांचको निर्जरा के लिए वंदन करना (चाहिये) ॥१३॥

माय पिअ जिट्ठभाया, ओमावि तहेव सव्व रायणिए;
किइकम्म न कारिज्जा, चउसमणाइ कुणंति पुणो ॥१४॥

दीक्षित माता, दीक्षित पिता, दीक्षितज्येष्ठ भाई (बडाभाई) विगेरे, तथा वय में छोटे हो फिर भी रत्नाधिक (ज्ञानगुण से, पर्याय से अधिक) इन चार से मुनि वंदन नहीं करवाने चाहिए। लेकिन इन चार के अलावा शेष सभी श्रमण आदि

से (साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका) वंदन करवायें, अतः साधु आदि चारों को वंदना करनी चाहिए ॥१४॥

विक्खित्त पराहुत्ते, अ पमत्ते मा कयाइ वंदिज्जा;
आहारं नीहारं, कुणमाणे काउ-कामे अ ॥ १५ ॥

गुरु जब व्यग्र (धर्म कार्य की चिंता में व्याकुल) चित्तवाले हों, पराङ्गमुख (सन्मुख बैठे न हों) हों, क्रोध, निद्रा विगेरे प्रमाद में हों, आहार-निहार करते हों, या करने की इच्छा वाले हो, तब कभी भी गुरु वंदन नहीं करने चाहिए ॥१५॥

पसंते आसणत्थे अ, उवसंते उवट्ठिए;
अणुन्नवित्तु मेहावी, किईकम्मं पउंजइ ॥ १६ ॥

गुरु जब प्रशान्त (अव्यग्र) चित्त वाले हो, आसन पर बिराजमान हो, उपशान्त (क्रोधादि रहित) हो, और वंदन के समय शिष्य को 'छंदेण' इत्यादि वचन कहने के लिए उपस्थित (तत्पर) हो तब (इन ४ प्रसंग पर) बुद्धिमान शिष्य आज्ञा लेकर गुरु को वंदन करे ॥१६॥

पडिक्कमणे सज्झाए, काउस्सग्गा-वराह पाहुणए;
आलोयण संवरणे, उत्तमट्ठे य वंदणयं ॥ १७ ॥

प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, काउस्सग्ग, अपराध खमाने, बड़े साधु प्राहुणा पधारे हो उनको, आलोचना, संवर के समय (प्रत्याख्यान के लिए) उत्तम अर्थ में (संलेखनादि के लिये) गुरु को वंदन करना ॥१७॥

दोवणय-महाजायं, आवत्ता बार चउसिर तिगुत्तं;
दुपवेसिग निक्खमणं, पणवीसावसय किईकम्मे ॥ १८ ॥

२ अवनत, १ यथाजात, १२ आवर्त्त, ४ शीर्ष, ३ गुप्ति, २ प्रवेश, और १ निष्क्रमण (निर्गमन) इस प्रकार द्वादशावर्त्त वंदन में २५ आवश्यक हैं ॥१८॥

किइकम्मंपि कुणंतो, न होइ किईकम्म-निज्जरा-भागी;
पणवीसा-मन्नयरं, साहू ठाणं विराहंतो ॥ १९ ॥

गुरु वंदन करते हुए साधु (उपलक्षण से साध्वी, श्रावक, श्राविका भी) इन पच्चीस आवश्यको में से किसी भी एक आवश्यक की विराधना करने पर भी (जैसे वैसे करने से) वंदन से होने वाली कर्मनिर्ज्जरा के फल के भागी नहीं होते है, (याने कर्म निर्जरा के भागी नही बनते है ।) भावार्थः- सुगम है ॥१९॥

दिट्ठि-पडिलेह एगा, छ उड्ढ-पप्फोड तिग-तिगंतरिआ;
अक्खोड पमज्जणया, नव नव मुहपत्ति पणवीसा ॥२०॥

दृष्टि प्रतिलेखना, ६ ऊर्ध्व पप्फोड़ा, और तीन तीन के अंतर में ९ आस्फोटक, तथा ९ प्रमार्जना (अर्थात् तीन तीन आस्फोटक के अंतर में तीन तीन प्रमार्जना अथवा तीन तीन प्रमार्जना के अंतर में तीन तीन आस्फोटक मिलकर ९

अखोडा ९ प्रमार्जना) इस प्रकार मुहपति की २५ प्रमार्जना समझना ॥२०॥

पायाहिणेण तिअ तिअ, वामेअर बाहु सीस मुह हियए;
अंसुड्ढाहो पिट्ठे, चउ छप्पय देह-पणवीसा ॥ २१ ॥

प्रदक्षिणा के अनुसार प्रथम बाँये हाथ की फिर दाहिने हाथ की, मस्तक की, मुख की और हृदय की तीन तीन प्रतिलेखना करना । बाद में दोनो स्कंधों के ऊपर तथा नीचे पीठ की प्रमार्जना करना, ये चार प्रतिलेखना पीठकी और उसके बाद ६ प्रतिलेखना दोनो पाँवो की, इस प्रकार पच्चीस प्रतिलेखना समजना ॥२१॥

आवस्सएसु जह जह, कुणइ पयत्तं अहीण-मइरित्तं;
तिविह-करणोवउत्तो, तह तह से निज्जरा होइ ॥ २२ ॥

जो जीव गुरुवंदन के पच्चीस आवश्यकों (तथा उपलक्षण से मुहपत्ति और शरीर की पच्चीस प्रतिलेखना के विषय में) के विषय में तीन प्रकार के करणों से (मन-वचन-काया-द्वारा) उपयुक्त - उपयोगवन्त होकर जैसे जैसे अन्यूनाधिक (न्युन भी नहीं अधिक भी नहीं इस तरह यथाविधि) प्रयत्न करे, वैसे जीवों की कर्म निर्ज्जरा अधिक अधिक होती है । (उपयोग रहित अविधि से हीनाधिक करे तो वैसे मुनि को भी विराधक समझना ।) ॥२२॥

दोस अणाढिअ थद्धिअ, पविद्ध परिपिंडिअं च टोलगई;
अंकुस कच्छभ-रिंगिअ, मच्छुव्वत्तं मणपउट्ठं ॥ २३ ॥
वेइयबद्ध भयंतं, भय गारव मित्त कारणा तिन्नं;
पडिणीय रुट्ठ तज्जिअ, सढ हीलिअ विपलिउं-चियय ॥२४॥
दिट्ठमदिट्ठं सिंगं, कर तम्मोअण अणिद्धणालिद्धं;
ऊणं उत्तरचूलिअ, मूअं ढड्ढर चुडलियं च ॥ २५ ॥

अनाहत (अनादर दोष) स्तब्धदोष, प्रविध्ध दोष, परिपिंडित दोष, टोलगति दोष, अंकुश दोष, कच्छपरिंगित दोष, मत्स्योदवृत्त दोष, मनःप्रदुष्ट दोष, वेदिकाबध्ध दोष, भजन्त दोष, भय दोष, गारव दोष, मित्र दोष, कारण दोष, स्तेन दोष, प्रत्यनीक दोष, रुष्ट दोष, तर्जित दोष, शठ दोष, हीलित दोष, विपरिकुंचित दोष, दृष्टादृष्ट दोष, शृंग दोष, कर दोष, करमोचन दोष, आश्लिष्ट दोष, अनाश्लिष्ट दोष, ऊन दोष, उत्तरचुड, दोष, मूक दोष, ढड्ढर दोष, और चुडलिक दोष, (इन बत्तीस दोषों को टालकर गुरुवंदन-द्वादशावर्त्त वंदन करना) ॥२३॥ ॥२४॥ ॥२५॥

बत्तीसदोस-परिसुद्धं, किईकम्मं जो पउंजइ गुरूणं;
सो पावइ निव्वाणं, अचिरेण विमाणवासं वा ॥ २६ ॥

जो साधु (साध्वी, श्रावक या श्राविका) गुरु को बत्तीस दोष से रहित अत्यंत शुद्ध कृतिकर्म (द्वादशावर्त्त वंदन) करे

वह साधु (विगेरे) शीघ्र निर्वाण-मोक्ष को प्राप्त करे, अथवा विमान मे वास (वैमानिक देव) प्राप्त करे ॥२६॥

इह छच्च गुणा विणओ-वयार माणाईभंग गुरुपूआ;
तित्थयराण य आणा, सुअधम्मा-राहणा किरिया ॥२७॥

यहाँ (गुरु वंदन से) छ गुण प्राप्त होते हैं, जो इस प्रकार विनयोपचार विनय वही उपचार-आराधना का प्रकार उसे विनयोपचार विनय वही उपचार = आराधना का प्रकार उसे विनयोपचार कहा जाता है । विनयगुण की प्राप्ति होती है । (२) मानभंग = अर्थात् अभिमान अहंकार का नाश होता है । (३) गुरु पूआ = गुरु जनो की सम्यक पूजा (सत्कार) होता है । श्री तीर्थंकर परमात्मा की (४) आज्ञा का आराधन अर्थात् आज्ञा का पालन होता है । (५) श्रुतधर्म की आराधना होती है । और परंपरा से (६) अक्रिया अर्थात् (७) सिद्धि प्राप्त होती है ॥२७॥

गुरुगुणजुत्तं तु गुरुं, ठाविज्जा अहव तत्थ अक्खाईं;
अहवा नाणाई-तिअं, ठविज्ज सक्खं गुरुअभावे ॥२८॥

साक्षात् गुरु की अनुपस्थिति के समय गुरु के ३६ गुण युक्त स्थापना गुरु स्थापना (अर्थात् गुरु की सद्भूत स्थापना) अथवा (सद्भूत स्थापना स्थापने का न बन सके तो) अक्ष (चंदन अरिया) विगेरे (की असद्भूत स्थापना) अथवा

ज्ञानादि तीन की स्थापना करना (ज्ञान-दर्शन और चारित्र के उपकरण को गुरु के रुप में मानकर सद्भूत स्थापना करना) ॥२८॥

अक्खे वराडए वा, कट्ठे पुत्थे अ चित्तकम्मे अ;
सब्भाव-मसब्भावं, गुरुठवणा-इत्तरावकहा ॥ २९ ॥

गुरु की स्थापना अक्षमें, वराटक-कोडेमें, काष्टमें, पुस्तक में, और चित्रकर्म (मूर्तिरुप आकृति मैं) में, की जाती है, वह सद्भाव और असद्भाव स्थापना रूप दो प्रकार की है। पुनः (दोनों स्थापनाएँ) इत्वर और यावत्कथित दो-दो प्रकार की है ॥२९॥

गुरुविरहंमि ठवणा, गुरूवएसोवदंसणत्थं च;
जिणविरहंमि जिणबिंब सेवणा-मंतणं सहलं ॥ ३० ॥

साक्षात् गुरु की अनुपस्थिति में स्थापना की जाती है। और वह स्थापना गुरु की आज्ञा हेतु होती है। (इसलिए गाथा में बताए गये च शब्द से स्थापना विना धर्मानुष्ठान नहीं करना) (उसके दृष्टान्त) जब साक्षात् जिनेश्वर का विरह होता है तब जिनेश्वरकी प्रतिमाकी सेवा और आमंत्रण सफल होता है। (वैसे ही गुरु के विरह में उनकी प्रतिमा-स्थापना समक्ष किये गये धर्मानुष्ठान सफल होते है) ॥३०॥

चउदिसि गुरुग्गहो इह, अहुट्ठ तेरस करे सपरपक्खे;
अणणुन्नायस्स सया, न कप्पए तत्थ पविसेउं ॥ ३१ ॥

अब यहाँ चारों दिशाओं में गुरु का अवग्रह स्वपक्ष के विषय में ३॥ हाथ है, और परपक्ष के विषय में १३ हाथ है। इसलिए उस अवग्रह में गुरु की अनुमति नही हो ऐसे साधुको कभी प्रवेश करना उचित नहीं । ॥३१॥

पण तिग बारस दुग तिग, चउरो छट्ठाण पय इगुणतीसं;
गुणतीस सेस आवस्सयाइ सव्वपय अडवन्ना ॥ ३२ ॥

१७ वाँ अक्षर द्वार सुगम होने के कारण नहीं कहा, और १८ वाँ पद द्वार, इस प्रकार (वंदन के आगे कहे जाने वाले ६ स्थान के विषय में अनुक्रम से) ५-३-१२-२-३-४ इन छ स्थानो में २९ पद है । तथा शेष रहे हुए अन्य भी 'आवस्सिआए' इत्यादि २९ पद हैं । जिससे सर्व पद ५८ हैं ॥३२॥

इच्छा य अणुन्नवणा, अव्वाबाहं च जत्त जवणा य;
अवराह-खामणा वि य, वंदण-दायस्स छट्ठाणा ॥ ३३ ॥

इच्छा, अनुज्ञा, अव्याबाध, संयमयात्रा, देहसमाधि और अपराधखामणा ये वंदन करनेवाले शिष्य के ६ स्थान है ॥३३॥

छंदेण-णुजाणामि, तहत्ति तुब्भंपि वट्टए एवं;
अहमवि खामेमि तुमं, वयणाइं वंदणरिहस्स ॥ ३४ ॥

छंदेण-अणुजणामि-तहत्ति-तुब्भंपि-वट्टए-एवं और 'अहमवि खामेमि तुमं' ये ६ वचन गुरु के होते है ॥३४॥

पुरओ पक्खासन्ने, गंता चिट्ठण निसीअणा-यमणे;
आलोयण पडिसुणणे, पुव्वा-लवणे अ आलोए ॥ ३५ ॥
तह उवदंस निमंतण, खद्धा-ययणे तहा अपडिसुणणे;
खद्धत्ति य तत्थ गए, किं तुम तज्जाय नोसुमणे ॥ ३६ ॥
नो सरसि कहं छित्ता, परिसंभित्ता अणुट्ठियाइ कहे;
संथार-पायघट्टण, चिट्ठु-च्च-समासणे आवि ॥ ३७ ॥

पुरोगमन (पुरोगन्ता) पक्षगमन-आसन्नगमन (पृष्ठगमन) तथा पुरःस्थ (=पुरःतिष्ठन्) पक्षस्थ (पक्षेतिष्ठन्) पृष्ठस्थ (आसन्न-तिष्ठन्)-तथा पुरो निषीदन पक्षेनिषीदन आसन्न निषीदिन (पृष्ठनिषीदिन) (ये नौ आशातनाएँ तीन तीन के त्रिक रुप है) तथा पूर्व आचमन पूर्व आलोचन- अप्रतिश्रवण, पूर्वालापन, पूर्वालोचन, पूर्वोपदर्शन, पूर्व निमंत्रण, खद्धदान-खद्धादन, अप्रतिश्रवण, खद्धं (खद्ध भाषण) तत्रगत, कि (क्या), तुं, तज्जात, (तज्जात वचन) नोसुमन नोस्मरण कथाछ्द, परिषद भेद, अनुत्थित कथा, संथारापाद घट्टनं संथारावस्थान उच्चासन और समासन आदि =यह भी ये ३३ आशातनाएँ है ॥३५-३६-३७॥

इरिया कुसुमिणुसग्गो, चिईवंदण पुत्ति वंदणा-लोयं;
वंदण खामण वंदण, संवर चउछोभ दुसज्झाओ ॥ ३८ ॥

इरियावहिय, कुसुमिण का कायोत्सर्ग, चैत्यवंदन, मुहपत्ति, दो वांदणा, आलोचन, वंदन, खामणावंदन, पच्चक्खाण, चार छोभवंदन, दो आदेश और दो स्वाध्याय यह संक्षेप में प्रातःकालीन गुरुवंदन विधि है ॥३८॥

इरिया चिईवंदण पुत्ति, वंदण चरिम-वंदणा-लोयं;
वंदणं खामण चउछोभ, दिवसुस्सग्गो दुसज्झाओ ॥ ३९ ॥

इरियावहिय, चैत्यवंदन, मुहपत्ति, दो वांदणा, दिवस चरिम का पच्चक्खाण, दो वांदणा, आलोचना, दो वांदणा, खामणा, चार छोभवंदन, देवसिय पायच्छितका कायोत्सर्ग और दो आदेशपूर्वक सज्झाय, यह शाम के संदिप्त गुरुवंदन की विधि है ॥३९॥

एयं किइकम्म-विहिं, जुंजंता चरण-करण-माउत्ता;
साहू खवंति कम्मं, अणेगभव-संचिय-मणंतं ॥ ४० ॥

इस प्रकार पूर्व में कहे अनुसार कृतिकर्म विधि (गुरुवंदन विधि को) को करने वाला एवँ चरण करण में (चारित्र व उसकी क्रिया में अर्थात् चरण व करण सित्तरि में) उपयोगवन्त साधु पूर्व भव के (में) एकत्रित किये हुए अनन्त (भवों के) कर्मोको खपाता है (याने मोक्ष जाता है) ॥४०॥

अप्पमइ भव्व-बोहत्थं, भासियं विवरियं च जमिह मए;
तं सोहंतु गियत्था, अणभिनिवेसी अमच्छरिणो ॥ ४१ ॥

अल्पमतिवंत भव्यजीवों को बोध करवाने के लिए (ये गुरुवंदन भाष्य नाम का प्रकरण मैंने (देवेन्द्रसूरि ने) कहा है। लेकिन उसमें मेरे द्वारा कुछ भी विपरीत कहा गया हो (याने मेरे अनजानपन में जो कुछ भूलचूक हुई हो) उस भूलचूक का आग्रहरहित और इर्ष्यारहित ऐसे हे गीतार्थ मुनिओ ! आप शुद्ध करें ॥४१॥

● ● ●

श्री पच्चक्खाण भाष्य

दस पच्चक्खाण चउविहि, आहार दुवीसगार अदुरुत्ता;
दस विगई तीस विगई-गय दुहभंगा छ सुद्धि फलं ॥१॥

१० प्रकार का पच्चक्खाण, ४ प्रकार का (उच्चार) विधि, ४ प्रकार का आहार, दूसरी बार बोले नहीं जानेवाले (नही गिने गये) ऐसे २२ आगार, १० विगई, ३० नीवियाते, २ प्रकार के भेद, ६ प्रकार की शुद्धि, और (२ प्रकार का) फल, (इस प्रकार ९ मूलद्वार के ९० उत्तर भेद होते हैं) ॥१॥

अणागय-मईक्कंतं, कोडीसहियं नियंटि अणगारं;
सागार निरवसेसं, परिमाणकडं सके अद्धा ॥ २ ॥

अनागत पच्चक्खाण, अतिक्रान्त पच्चक्खाण, कोटिसहित पच्चक्खाण, नियन्त्रित पच्चक्खाण, अनागार पच्चक्खाण, सागर पच्चक्खाण, निरवशेष पच्चक्खाण, परिमाणकृत पच्चक्खाण, संकेत पच्चक्खाण, और अद्धापच्चक्खाण, (इस प्रकार १० प्रकार के पच्चक्खाण हैं) ॥२॥

नवकारसहिअ पोरिसि, पुरिमड्ढे-गासणे-गठाणे अ;
आयंबिल अब्भतट्ठे, चरिमे अ अभिग्गहे विगई ॥ ३ ॥

नवकार सहित (नवकार सी) पौरुषी, पुरिमार्ध (पुरिमड्ढ) एकाशन, एकस्थान (एकलठाणा) आयंबिल, अभक्तार्थ (उपवास), दिवसचरिम, अभिग्रह, और विकृति (नीवी) विगेरे अध्धा पच्चक्खाण के १० भेद हैं ॥३॥

उग्गए सूरे अ नमो, पोरिसि पच्चक्ख उग्गए सूरे;
सूरे उग्गए पुरिमं, अभतट्ठं पच्चक्खाईत्ति ॥ ४ ॥

प्रथम उच्चार विधि उग्गए सूरे नमो अर्थात् उग्गए सूरे नमुक्कार सहियं । दूसरा उच्चार विधि पोरिसि पच्चक्ख उग्गए सूरे अर्थात् पच्चक्खामि उग्गए सूरे (अथवा) (उग्गए सूरे पोरिसिअं पच्चक्खामि) ये दूसरा उच्चार विधि पोरिसि व सार्धपोरिसि के लिए भी समझना । सिर्फ तफावत इतना है कि सार्धपोरिसि के लिए साढपोरिसि पद को बोलना तथा तीसरा उच्चार विधि सूरे उग्गए पुरिमं याने सूरे उग्गए पुरिमड्ढं पच्चक्खामि है । ये उच्चार विधि पुरिमड्ढ और अवड्ढ के लिए भी समझना । चतुर्थ उच्चार विधि सूरे उग्गए अभतट्ठं याने सूरे उग्गए अभत्तट्ठं पच्चक्खामि है । ये उपवास के लिए है । गाथामें पच्चक्खाइ त्ति ये पद पाँचवी गाथा से संबंधित है ।

इस प्रकार यहाँ पर ४ प्रकार की उच्चार विधि एक अहोरात्रि में जितने अध्धा पच्चक्खाण सूर्योदय से किये जा सकते है । उतने अध्धापच्चक्खाण आश्रयि दर्शाया है ।

तथा जिन दो उच्चार विधिमें उग्गए सूरे पाठ आता है। उन पच्चक्खाणों की सूर्योदय से पूर्व धारणा करने पर शुद्ध गिने जाते है। और जिसमें सूरे उग्गए पाठ आता है, उन पच्चक्खाणोंको सूर्योदय के बादमें भी धारा जा सकता है। इस प्रकार उग्गए सूरे और सूरे उग्गए ये दोनों पाठो में सूर्योदय से लेकर के ये अर्थ यद्यपि समान है, फिर भी क्रियाविधि भिन्न होने से इन दोनों पाठों का भेद सार्थक (कारणयुक्त) है ॥४॥

भणइ गुरु सीसो पुण, पच्चक्खामि त्ति एव वोसिरइ,
उवओगित्थ पमाणं, न पमाणं वंजणच्छलणा ॥ ५ ॥

(पच्चक्खाण का पाठ उच्चरते समय) गुरु जब पच्चक्खाइ बोले तब शिष्य पच्चक्खामि इस प्रकार बोले। और इसी प्रकार जब गुरु वोसिरइ बोले तब शिष्य वोसिरामि कहे। तथा पच्चक्खाण लेने में पच्चक्खाण लेने वाले का उपयोग ही (धारा हुआ पच्चक्खाण) प्रमाण है। लेकिन अक्षर की स्खलना भूल प्रमाण नही है। ॥५॥

पढमे ठाणे तेरस, बीए तिन्नि उ तिगाई तईअंमि;
पाणस्स चउत्थंमि, देसवगासाई पंचमए ॥ ६ ॥

प्रथम उच्चार स्थान में १३ भेद है। दूसरे उच्चार स्थान में ३ भेद है। तीसरे उच्चार स्थान में ३ भेद है। चौथे

उच्चार स्थान में पाणस्स का १ भेद है। और पांचवें उच्चार स्थान में देसावगासिक वगैरह का १ भेद है। (इस प्रकार पाँचो उच्चार स्थान के कुल २१ भेद हैं। अथवा इन्हें २१ उच्चार स्थान भी कहा जाता है।) ॥६॥

नमु पोरिसि सड्ढा, पुरिम-वड्ढ अंगुट्ठमाई अड तेर;
निवि विगइं बिल तिय तिय, दु ईगासण एगठाणाइं ॥७॥

नवकारसी-पोरिसि- सार्धपोरिसि-पुरिमड्ढ-अवड्ढ और अंगुट्ठ सहियं आदि आठ ये तेरह प्रकार (के उच्चार भेद) प्रथम स्थान में है। तथा नीवि, विगइ और आयंबिल तीन दूसरे स्थान में हैं। तथा (दु(आसण) = इग) बिआसन एकाशन, और एकलठाण ये ३ प्रकार तीसरे स्थान में है। (और चौथे तथा पांचवे स्थानमें तो पूर्व कथित पाणस्सका व देशावगासिकका ही एक एक प्रकार है, इस प्रकार अध्याहार से समझना ॥७॥)

पढमंमि चउत्थाई, तेरस बीयंमि तईय पाणस्स;
देसवगासं तुरिए, चरिमे जह संभवं नेयं ॥ ८ ॥

उपवास के प्रथम उच्चारस्थान में चतुर्भक्त से लेकर चौंतीसभक्त तक का पच्चक्खाण, दूसरे स्थानमें (नमुक्कारसहियं आदि) १३ पच्चक्खाण, तीसरे उच्चार स्थान में पाणस्स का, चौथे उच्चारस्थान में देसावगासिक का, और पाँचवे उच्चार

स्थानमें संध्या समय में यथासंभव पाणहार का याने चउविहार का पच्चक्खाण होता है । ॥८॥

तह मज्ज पच्चक्खाणेसु न पिहु सूरुग्ग-याई वोसिरई;
करणविही उ न भन्नइ, जहावसीयाई बिअछंदे ॥ ९ ॥

तथा मध्यम के प्रत्याख्यानों में सूरे उग्गए तथा वोसिरइ इन पदों का भिन्न उच्चार नही करना । जिस प्रकार दूसरे वंदनक में आवसिआए पद का उच्चार दूसरी बार नही किया जाता है, वैसे ही (सूरे उग्गए और वोसिरइ पद भी) बारबार नही बोलना ये करणविधि (प्रत्याख्यान उच्चारने का विधि) ही ऐसा है । ॥९॥

तह तिविह पच्चक्खाणे, भन्नंति अ पाणगस्स आगारा;
दुविहाहारे अचित्त भोईणो तह य फासुजले ॥ १० ॥

तथा तिविहार के प्रत्याख्यान में (अर्थात् तिविहार उपवास एकाशन विगेरेमें:) पाणस्स के आगार (आलापक) उच्चरने में आते हैं । तथा एकाशनादि दुविहार वाले हो, तो उसमें भी करनेवाले उचित भोजन को पाणस्स के आगार करना, तथा एकाशनादि प्रत्याख्यान रहित श्रावक यदि उष्ण जल पीने का नियमवाला हो तो उसे भी पाणस्स के आगार करना । (तात्पर्य उष्ण जल पीने के नियम में सर्वत्र पाणस्स के आगार बोलना) ॥१०॥

ईत्तुच्चिय खवणंबिल-निवियाईसु फासुयं चिय जलं तु;
सड्ढा वि पियंति तहा, पच्चक्खंति य तिहाहारं ॥ ११ ॥

इस हेतु से ही उपवास, आयंबिल और नीवि विगेरे में श्रावक भी निश्चय (अवश्य) प्रासुक- अचित्त जल पीवे तथा तिविहार का प्रत्याख्यान (उपवासादिक में) करे । ॥११॥

चउहाहारं तु नमो, रत्तिंपि मुणीण सेस तिह-चउहा;
निसि पोरिसि पुरिमेगा सणाई सड्ढाण दुति-चउहा ॥१२॥

मुनि को नवकारसी का तथा रात्रिका (दिवस चरिम) प्रत्याख्यान चउविहार रूप ही होता है । और शेष (पोरिसि आदि प्रत्याख्यान तिविहार चउविहार रूप दो प्रकार के होते है । तथा श्रावक को तो रात्रि का (दिवस चरिम) और पोरिसि, पुरिमड्ढ. तथा एकाशनादि प्रत्याख्यान दुविहार, तिविहार, चउविहार रूप तीन प्रकार होते है । (नवकारसी का प्रत्याख्यान तो श्रावक को भी चउविहार वाला ही होता है । कारण कि नवकारसी पच्चक्खाण तो गत रात्रि के चउविहार प्रत्याख्यान को कुछ अधिक करने के रुप में कहा है । ॥१२॥

खुहपसम-खमेगागी, आहारि व एई देई वा सायं;
खुहिओ व खिवई कुड्डे, जं पंकुवमं तमाहारो ॥ १३ ॥

जो अकेला होने पर भी क्षुधा को शांत करने में समर्थ हो, अथवा आहार में आता हो, या आहार का स्वाद देता हो

किच्चइ के समान जिस निरस द्रव्य पदार्थ को भूखा व्यक्ति उदर मे प्रक्षेपे (खाला है उसे) (इन चारों लक्षणवाला द्रव्य) आहार कहा जाता है । ॥१३॥

असणे मुग्गो-यण-सत्तु-मंडपय-खज्ज-रब्ब-कंदाई;
पाणे कंजिय जव कयर, कक्कडो-दग सुराइजलं ॥१४॥

मूंग विगेरे (=सभी कठोल) चाँवल विगेरे (=सर्व प्रकार के चाँवल, गेहूँ विगेरे धान्य) साथु विगेरे (जवार, मूंग विगेरे को सेक कर बनाया हुआ आटा) मांडा विगेरे (पूडे, रोटी, रोटे, बाटी विगेरे) दूध विगेरे (दहीं, घी विगेरे) खाजे विगेरे (सभी प्रकार के पकवान विगेरे)राब विगेरे (मक्का, गेहूँ, चाँवल विगेरे की) और कंद विगेरे (सभी प्रकार की वनस्पति के कंद और फलादि की बनाई हुई सब्जी विगेरे) इस प्रकार इन (८) आठ विभाग वाले सभी पदार्थो का समावेश अशन में होता है । और कांजी का पानी (=छास की आछ) जऊ का पानी (=जऊ का धोवण) केर का पानी (केर का धोवण) और ककडी, तरबूज, खडबूजे आदि फलो के अंदर रहा हुआ पानी या उनके धोवण का पानी, तथा मदिरा विगेरे का पेय, ये सभी पान आहार में गिने जाते है । ॥१४॥

खाईमे भत्तोस फलाई साईमे सुंठि जीर अजमाई;
महु गुड तंबोलाई, अणहारे मोय निंबाई ॥ १५ ॥

(भत्तोस = भक्तोष याने) सेके हुए धान्य तथा फलादि वस्तुएँ खादिम में आती है । सूंठ, जीरा, अजवायन विगेरे तथा शहद, गुड, तंबोल विगेरे भी स्वादिम में आते है । और मूत्र (गोमूत्र) तथा निम विगेरे अनाहार में आते है । ॥१५॥

दो नवकारि छ पोरिसि, सग पुरिमड्ढे ईगासणे अट्ठ;
सत्तेगठाणि अंबिलि, अट्ठ पण चउत्थि छ पाणे ॥१६॥

नवकारसी में २ आगार, पोरिसी में ६ आगार पुरिमड्ढ में ७ आगार, एकाशन में (तथा बिआसने में) ८ आगार, एकलठाणे में ७ आगार, आयंबिल में ८ आगार, चतुर्थभक्त में (उपवास में) ५ आगार और पाणस्स के प्रत्याख्याने में ६ आगार होते हैं । ॥१६॥

चउ चरिमे चउ-भिग्गहि, पण पावरणे नवट्ठ निव्वीए;
आगारुक्खित्त विवेग मुत्तुं दव विगई नियमि-ट्ठ ॥ १७ ॥

चरिम प्रत्याख्यानों में (दिवस चरिम और भव चरिम में) ४ आगार, अभिग्रह में ४ आगार, प्रावरण (वस्त्र के) प्रत्याख्यान में ५ आगार. और नीवि में ९ आगार, अथवा ८ आगार । यदि नीवि के विषय में पिंडविगइ और द्रव विगइ इन दोनों का प्रत्याख्यान हो तो (९ आगार) मात्र द्रव विगइ के नियम में उक्खित्त विवेगेणं इस आगार को छोडकर शेष ८ आगार होते हैं । ॥१७॥

अन्न सह दु नमुक्कारे, अन्न सह पच्छ दिस य साहु सव्व;
पोरिसि छ सड्ढपोरिसि, पुरिमड्ढे सत्त समहत्तरा ॥ १८ ॥

नमुक्कार सहियं के पच्चक्खाण में, अन्नत्थणाभोगेणं और सहसागारेणं ये दो आगार हैं, तथा अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणएणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, ये ६ आगार पोरिसी व सार्धपोरिसी के प्रत्याख्यान के है । और महत्तरागारेणं सहित ७ आगार पुरिमार्ध के (तथा अपार्ध = अवड्ढ के) प्रत्याख्यान मे होते हैं । ॥१८॥

अन्न सहस्सागारि अ, आउंटण गुरु अ पारि मह सव्व;
एग बिआसणि अट्ठ उ, सग इगठाणे अउंट विणा ॥१९॥

अन्न = अन्नत्थणा भोगेणं, सह = सहसागारेणं, सागारी = सागारि आगारेणं, आउंटण = आउंटण पसारेणं, गुरु = गुरु अब्भुट्ठाणं, पारि = पारिट्ठावणिया गारेणं, मह = महत्तरा गारेणं, सव्व = सव्व समाहि वत्तिया गारेणं, ये आठ आगार एकासने और बिआसने में होते हैं । और एकलठाण में आउंटण पसारेणं इस आगार के बिना शेष सात आगार होते हैं । ॥१९॥

अन्न सह लेवा गिह, उक्खित्त पडुच्च पारि मह सव्व;
विगई निव्विगए नव, पडुच्च विणु अंबिले अट्ठ ॥२०॥

अन्नत्थणा भोगेणं, सहसा गारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थ-संसट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेणं, पडुच्चमक्खिएणं, पारिट्ठावणिया-गारेणं, महत्तरागारेणं और सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, ये ९ आगार विगइ और नीवि के पच्चक्खाण में होते हैं। और पडुच्चम-क्खिएणं के अलावा ८ आगार आयंबिल में आते हैं। ॥२०॥

अन्न सह पारि मह सव्व, पंच खवणे छ पाणि लेवाई;
चउ चरिमंगुट्ठाई, भिग्गहि अन्न सह मह सव्व ॥ २१ ॥

क्षपण में (उपवास में) अन्नत्थणाभोगेणं - सहसागारेणं पारिट्ठावणियागारेणं - महत्तरागारेणं और सव्वसमाहि वत्तियागारेणं ये ५ आगार होते हैं। पानी के प्रत्याख्यान में लेवेण वा आदि ६ आगार (लेवेण वा- अलेवेण वा-अच्छेण वा- बहुलेवेण वा-ससित्थेण वा असित्थेणवा ये ६ आगार) तथा चरिम प्रत्याख्यान में और अंगुट्ठसहियं आदि अभिग्रह के (संकेत विगेरे) प्रत्याख्यानोमें अन्नत्थणा भोगेणं सहसागारेणं-महत्तागारेणं और सव्वसमाहि वत्तियागारेणं ये ४ आगार होते हैं। ॥२१॥

दुद्ध महु मज्ज तिल्लं, चउरो दवविगई चउर पिंडदवा;
घय गुल दहियं पिसियं, मक्खण पक्कन्न दो पिंडा ॥२२॥

दूध, शहद, मदिरा, और तेल ये चार द्रव (प्रवाही) विगइ है तथा घी, गुड, दहि, और मांस ये ४ पिंड द्रव

अर्थात् मिश्र विगइ है । तथा मक्खन और पकवान्न ये दो पिंड विगइ है । ॥२२॥

पोरिसि सड्ढ-अवड्ढं, दुभत्त निव्विगई पोरिसाई समा;
अंगुट्ठ-मुट्ठि-गंठी, सचित्त दव्वाई-भिग्गहियं ॥ २३ ॥

पोरिसी और सार्धपोरिसी के, अवड्ढ और पुरिमड्ढ के, तथा (दुभत्त =) बिआसने व एकाशन के, (निव्विगइ =) नीवि और विगइ के, अंगुट्ठसहियं मुट्ठिसहियं और गंठि सहियं आदि ८ संकेत प्रत्याख्यान तथा सचित द्रव्यादिक का (= द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से) अभिग्रह, तथा देसावगासिक (इन दोनों के) परस्पर समान आगार हैं । अर्थात् आगारों की संख्या और आगारों के नाम समान हैं । ॥२३॥

विस्सरण-मणाभोगो, सहसागारो सयं मुहपवेसो;
पच्छन्नकाल मेहाई दिसि-विवज्जासु दिसिमोहो ॥ २४ ॥

विस्मरण वह अनाभोग, आहार के पदार्थ अकस्मात मुख में प्रवेश करे, वह सहसागर, वर्षा विगेरे से (समय का पता न चलने पर) वह पच्छन्नकाल, और दिशाओं का फेरफार समझने से दिशामोह आगार समझना चाहिये । ॥२४॥

साहुवयण उग्घाडा, पोरिसि तणु-सुत्थया समाहित्ति;
संघाईकज्ज महत्तर, गिहत्थ-बंदाई सागारी ॥ २५ ॥

"उग्घाडा पोरिसी" इस प्रकार मुनि का वचन सुनकर अपूर्ण काल में (पोरिसी पच्च०) प्रत्याख्यान पारना । वह साहुवयणं आगार कहलाता है । शरीरादि की स्वस्थता के लिए जो आगार इसे सव्वसमाहि वत्तिया गारेणं आगार कहा जाता है । संघ विगेरे के महान कार्य वाला (= प्रयोजन वाला) अथवा महानिर्जरा वाला आगार उसे महत्तरागार आगार कहा जाता है, और गृहस्थ तथा बन्दी विगेरे संबंधि आगार उसे सागारी आगार कहा जाता है । ॥२५॥

आउंटण-मंगाणं, गुरु-पाहुण-साहु गुरुअब्भुट्ठाणं;
परिट्ठावणविहि-गहिए, जईण पावरणि कडिपट्टे ॥ २६ ॥

अंग को संकुचित प्रसारण करना वह "**आउंटणपसारेण**" आगार, गुरु या प्राहुणा साधु (वडीलसाधु) के आनेपर खडे होना, वह "**गुरु अब्भुट्ठाणेण**" आगार, विधिपूर्वक ग्रहण करने पर शेष परठवने योग्य आहार को (गुरु आज्ञासे) लेना (वापरना) वह "पारिट्ठा वणियागारेण" आगार यति को ही होता है । तथा वस्त्र के प्रत्याख्यान में "**चालपट्टागारेण**" आगार भी यति को ही होता है । ॥२६॥

खरडिय लूहिअ डोवाई लेव संसट्ठ डुच्च मंडाई;
उक्खित्त पिंड विगईण, मक्खियं अंगुलिही मणा ॥ २७ ॥

(अकल्पनीय द्रव्य से) लिप्त चम्मच विगेरे को पूंछ लीया हो, वह लेवालेवेणं आगार, सब्जि तथा रोटी विगेरे को गृहस्थने (विगइ से) मिश्रित किया (= स्पर्श की हो) वह गिहत्तसंसट्ठेण आगार, पिंडविगइ को उठा ली (= ले ली) हो, वह उक्खित्त विवेगेणं आगार और रोटी विगेरे को किंचित् (विगइ से) मसली हो, वह पडुच्चमक्खिएणं आगार । ॥२७॥

लेवाडं आयामाई इअर सोवीरमच्छ-मुसिणजलं;
धोअण बहुल ससित्थं, उस्सेइम इअर सित्थ विणा ॥२८॥

कांजी विगेरे का पानी लेपकृत कहा जाता है । जिससे (उसकी छूटवाला) "लेवेण वा" आगार है । कांजी विगेरे अलेपकृत पानी है, अतः "अलेवेण वा आगार है । उष्ण जल निर्मल जल है, उसकी छूटवाला "अच्छेण वा" आगार है । चाँवल विगेरे का धोयण बहुल कहा जाता है, उसकी छूटवाला "बहुलेवेण वा" आगार है । आटे का धोवन ससित्थ (दाने वाला) होता है, उसकी छूटवाला "ससित्थेण वा" आगार है । और उससे विपरित "असित्थेण वा" आगार है । ॥२८॥

पण चउ चउ चउदुदुविह, छ भक्ख दुद्धाई विगई इगवीसं;
ति दुति चउविह अभक्खा, चउ महुमाई विगई बार ॥२९॥

५-४-४-४-२ और २ भेद इस प्रकार दूध विगेरे छ भक्ष्य विगई के २१ भेद हैं, और मधु विगेरे चार अभक्ष्य विगई के अनुक्रम से ३-२-३ और ४ कुल १२ भेद हैं । भावार्थ सुगम हैं, विगई के उत्तर भेद इस प्रकार हैं । ॥२९॥

खीर घय दहिअ तिल्लं, गुड (ल) पक्कन्नं छ भक्ख विगईओ;
गो-महिसि-उट्टि-अय-एलगाण पण दुद्ध अह चउरो ॥ ३० ॥
घय दहिआ उट्टि-विणा, तिल सरिसव अयसिलट्ट तिल्लचऊ;
दवगुड पिंडगुडा दो, पक्कन्नं तिल्ल-घय-तलियं ॥ ३१ ॥

दूध, घी दही-तेल-गुड-और पकवान्न ये ६ भक्ष्य विगइ है । दूध ५ प्रकार का है, गाय-भेंस-बकरी-ऊंटडी और भेड का, विगई मे गिना जाता है । तथा चार प्रकार का घी (घृत) तथा दहि ऊंटडी के विना जानना । तथा तिल-सरसव-अलसी-और कुसुंबी के घास का तेल, ये चार प्रकार का तेल (विगई रुप) है । द्रवगुड और पिंडगुड दो प्रकार का गुड विगइ रुप है । और तेल व घी में तला हुआ पकवान्न दो प्रकार का विगई रुप है । ॥३०॥ ॥३१॥

पयसाडि-खीर-पेया वलेहि दुद्धट्टि दुद्ध विगइगया;
दक्ख बहु अप्प तंदुल, तच्चुन्नं-बिलसहिअ दुद्धे ॥३२॥

(१) द्राक्ष सहित उकाला हुआ दूध (प्रायः बासुंदी उसे) पयःशाटी कहा जाता है । (२) अधिक तंदूल के साथ उबाला हुआ दूध खीर कहलाता है । (३) अल्प तंदूल के

साथ उबाला हुआ दूध पेया कहलाता है । (४) तंदूल के चूर्ण के साथ उबाला हुआ दूध अवलेहिका कहलाता है । और (५) खट्टे पदार्थो के साथ उबाला हुआ दूध दुग्धाटी कहलाता है ।

(इस प्रकार पाँच प्रकार से पदार्थो के साथ रांधा हुआ दूध अविगइ = नीवियाते गिने जाते हैं) ये नीवियते उपधान में नीवि के प्रत्याख्यान में कल्पते हैं, अन्य नीवि में (उपधान सिवाय) नहीं कल्पते हैं । ॥३२॥

निब्भंजण वीसंदण, पक्कोसहितरिय किट्टि पक्कघयं;
दहिए करंब सिहरिणि, सलवण-दहि घोल घोलवडा ॥३३॥

पक्कवान तरलेने के बाद कढाई में बचा हुआ घृत उसे निर्भंजन तथा दहि की तरी और आटा इन दो को मिलाकर बनाइ हुइ कुलेर भी उसे विस्पंदन औषधि (= वनस्पति विशेष) मिलाकर गरम किये हुए घृत की तरी उसे पक्वौषधि तरित घृतको गरम करने पर उस पर आने वाला मेल उसे किट्टि, और आंवले विगेरे औषधि डालकर पकाया हुआ घृत उसे पक्वघृत कहा जाता है । (इस प्रकार घृत के पाँच निवियाते(= पाँच प्रकार का अविकृत घी) निवि में कल्पते हैं । तथा सिझे हुए चाँवल मिश्रित दहि उसे करम्ब दहिका पानी निकालने के बाद शेष मावे को अथवा दही में

सक्कर मिलाकर वस्त्र से छानकर पानी निकाला हुआ शेष दहि उसे शिखरिणि शिखंड नमक डालकर मथा हुआ दहि उसे सलवण दहि, वस्त्र से छाना हुआ दहि उसे घोल और उस घोल में वडे डाले हो उसे घोलवडा अथवा घोल डालकर बनाये हुए वडे भी घोलवडा कहा जाता है । (निवि के प्रत्याख्यान में ये दहि के पाँच निवियाते (= दहि की पाँच अविगई)निवि के प्रत्याख्यान में कल्पते हैं । ॥३३॥

तिलकुट्टी निब्भंजण, पक्कतिल पक्कुसहि तरिय तिल्लमली;
सक्कर गुलवाणय पाय खंड अद्धकढि इक्खुरसो ॥ ३४ ॥

तिलकुट्टि निर्भंजन पक्वतेल पक्वौषधितरित और तेल का मेल, ये तेल के पाँच नीवियाते हैं । तथा साकर गुडपानी, पक्वगुड. शक्कर और आधा उकाला हुआ गन्ने का रस ये पाँच गुड के नीवियाते हैं । ॥३४॥

पूरिय तव पूआ बीय पूअतन्नेह तुरिय घाणाई;
गुलहाणी जललप्पसि, य पंचमो पूत्तिकय पूओ ॥ ३५ ॥

तवी पूराय वैसी (तवी के बराबर) प्रथम पूरी, दूसरी पूरी, तथा उसी तेलादिक में तला हुआ चोथा आदि घाण, गुलधाणी, जललापसी, और पोता दिया हुई पुरी पाँचवा नीवियाता है । ॥३५॥

दुद्ध दही चउरंगुल, दव गुड घय तिल्ल एग भत्तुवरिं;
पिंडगुल मक्खणाणं, अद्दामलयं च संसट्ठं ॥ ३६ ॥

भोजन के ऊपर दूध और दहि चार अंगुल (चढा हुआ हो) वहाँ त क संसृष्ट और नरम गुड, नरम घी और तेल एक अंगुल ऊपर चढा हो वहाँ तक संसृष्ट, और ठोस गुड तथा मक्खन पीलु या शीणवृक्ष के महोर के समान कण-खंड वाला हो वहाँ तक संसृष्ट (हो तो नीवि में चल सकते हैं, अधिक संसृष्ट होने पर नही चल सकते हैं ।) ॥३६॥

दव्वहया विगई विगइ-गय पुणो तेण तं हयं दव्वं;
उद्धरिए तत्तंमि य, उक्किट्ठ दव्वं इमं चन्ने ॥ ३७ ॥

अन्य द्रव्यों से हनायी हुई विगई विकृतिगत-अर्थात् नीवियाता कहलाती है । और इस कारण से वह हना हुआ द्रव्य कहलाता है । तथा पकवान्न उद्धरने के बाद उद्धृत घी (बचा हुआ घी) विगेरे से उसमें जो द्रव्य बनाने में आता है उसे भी नीवियाता कहा जाता है । और इस नीवियाता को अन्य आचार्य 'उत्कृष्ट द्रव्य' ऐसा नाम देते हैं ॥३७॥

तिलसक्कुलि वरसोलाई, रायणंबाई दक्खवाणाई;
डोली तिल्लाई इअ, सरसुत्तम दव्व लेवकडा ॥ ३८ ॥

तिलपापडी वरसोला आदि, रायण और आम(केरी) विगेरे, द्राक्षपान विगेरे डोलिया और (अविगई) तेल विगेरे, सरसोत्तम द्रव्य और लेपकृत द्रव्य है । ॥३८॥

विगइगया संसट्ठा, उत्तमदव्वा य निव्विगइयंमि;
कारणजायं मुत्तुं, कप्पंति न भुत्तुं जं वुत्तं ॥ ३९ ॥

नीवियाते (३० वीं गाथा के अनुसार) तथा ३६ वीं गाथा में कहे हुए संसृष्ट द्रव्य, और उत्तम द्रव्य (३८ वीं गाथा में दर्शाये गये) ये तीनो ही प्रकार के द्रव्य यद्यपि विगइ-विकृति है । फिर भी नीवि के प्रत्याख्यान में कुछ कारण उत्पन्न हुआ हो, उस कारण को छोडकर शेष नीविओं में (खाना) भक्षण करना नही कल्पता है । तथा प्रकार के प्रबल (मुख्य) कारण बिना ये द्रव्य नीवि में नहीं हैं । (इस कारण से संबंधित सिद्धान्त की (निशिथ भाष्य की) गाथा आगे दर्शायी गयी है ।) ॥३९॥

विगइं विगइ भीओ, विगइगयं जो अ भुंजए साहू;
विगइं विगइ-सहावा, विगइं विगइ बला नेइ ॥ ४० ॥

विगति स (याने दुर्गति से अथवा असंयम से) भयभीत साधु विगई और निवीयतो का (तथा उपलक्षण से संसृष्ट द्रव्य, व उत्तमद्रव्यों का) भक्षण करता है, (उस साधु को) विगई तथा उपलक्षण से नीवियाते आदि तीनो ही प्रकार के द्रव्य भी (विगई =) विकृति के (इन्द्रियो को विकार उपजाने के) स्वभाव वाले होते है । अतः वह (विगति स्वभाववाली)

विगई विगति में (याने दुर्गति अथवा असंयम में) बलात्कार से ले जाते है ।

(अर्थात् बिना कारण से रसना के लालच से विगई का उपयोग करने वाले साधु को भी वह बलात्कार से दुर्गति में ले जाती है, तथा संयममार्ग से भी पतित करती है ।). ॥४०॥

कुत्तिय मच्छिय भामर, महुं तिहा कट्ठ पिट्ठ मज्ज दुहा;
जल थल खग मंस तिहा, घयव्व मक्खण चउ अभक्खा ॥४१॥

कुंतियां का, मधुमक्खि का, एव भ्रमर का शहद इस प्रकार शहद के तीन प्रकार हैं । तथा काष्ठ (वनस्पति) मदिरा और पिष्ट (आटे की) मदिरा, इस प्रकार मदिरा के दो प्रकार की है । तथा जलचर-स्थलचर एवँ खेचर जीवों का मांस, इस प्रकार मांस तीन प्रकार के है । घृत की तरह मक्खन भी चार प्रकार के है । इस प्रकार अभक्ष्य विगई १२ प्रकार की है ।

कच्ची मांसपेशीयाँ में, (= कच्चे में) पकाये हुए मांस मे, तथा अग्नि के ऊपर सेके हुए (= पकाये हुए) मांस में, इन तीनो ही अवस्था में निश्चय निगोद जीवों की (अनंत बादर साधारण वनस्पति काय के जीवो की निरन्तर (प्रतिसमय) उत्पति कही है । इस प्रकार मांस में जबकि

अनन्त निगोद जीवों की उत्पत्ति होती है, तो द्विन्द्रियादि असंख्य त्रस जीवों की उत्पत्ति तो स्वाभाविक होती ही है । तथा मांस मे तथा जरा जन्म और मृत्यु से भयंकर ऐसे इस भवसमुद्र से उद्वेग पाये हुए चितवाले मुनिओ के लिए (असाधुओं का आचरण) प्रमाण नही है । जिस कारण से दुःखरुपी दावानल की अग्नि से तप्त ऐसे जीवो को संसाररुपी अटवी में श्री जिनेश्वर की आज्ञा के अलावा अन्य कोई उपाय (प्रतीकार) नहीं है अन्य अभक्ष्यों की तरह अन्तर्मुहूर्त बादमें जीवोत्पत्ति होती है ऐसा नहीं है, लेकिन जीव से अलग करने पर तुरन्त ही जीवोत्पत्ति प्रारंभ हो जाती है । कहा है कि... ॥४१॥

मण वयण काय मणवय, मणतणु वयतणु तिजोगि सगसत्त;
कर कारणुमइ दु ति जुई, तिकालि सीयाल-भंग-सयं ॥४२॥

मन-वचन-काया-मन-वचन-मन-काया-वचन-काया और (त्रिसंयोगी याने) मन वचन काया ये सात भांगे तीन योग के है । उसे कराना- करना-अनुमोदन करना (तथा द्विसंयोगी याने) करना-कराना, कराना अनुमोदना कराना, और कराना अनुभोदन कराना तथा (त्रिसंयोगी १ भांगा याने) करना कराना-अनुभोदन करना ये सात भांगे त्रिकरण के होते हैं । (साथ गुनते-सात सप्तक के ४९ भांगे हैं) और उसे तीन काल से गुणने पर १४७ भांगे होते है । ॥४२॥

एयं च उत्तकाले, सयं च मण वयण तणूहिं पालणियं;
जाणग-जाणग पास त्ति भंग चउगे तिसु अणुन्ना ॥ ४३ ॥

इन (पौरुषी आदि) प्रत्याख्यानों को उनके कहे हुए (एक प्रहर इत्यादि) काल तक स्वयं मन वचन काया से परिपालन करे (लेकिन भांगे नही) तथा प्रत्या० के जानकार और अजानकार के पास से प्रत्याख्यान लेने - देने के चार विकल्पो में तीन विकल्प के विषय में प्रत्याख्यान करने की आज्ञा है । ॥४३॥

फासिय पालिय सोहिय, तीरिय किट्टिय आराहिअ छ सुद्धं;
पच्चक्खाणं फासिय, विहिणोचिय-कालि जं पत्तं ॥ ४४ ॥

स्पर्शित - पालित - शोधित - तीरित - कीर्तित और आराधित (ये छ प्रकार की) शुद्धि है । विधि पूर्वक उचित समय में (सूर्योदय से पूर्व) यदि प्रत्याख्यान किया हो (लिया हो वह स्पर्शित प्रत्याख्यान कहलाता है । ॥४४॥

पालिय पुण पुण सरियं, सोहिय गुरुदत्त सेस भोयणओ;
तीरिय समहिय काला, किट्टिय भोयण समय सरणा ॥४५॥

किये हुए प्रत्याख्यान का वारंवार स्मरण किया हो तो वह पालित प्रत्या० कहलाता है । तथा गुरु को देने के बाद शेष बचा हुआ भोजन करने से शोधित अथवा शोभित

(शुद्ध किया या सुशोभित किया) प्रत्या० कहलाता है । तथा (प्रत्या० का तो काल दर्शाया है उस काल से भी) अधिक काल करने से (प्रत्या० देरी से पारने से) तीरित (तीर्यु) प्रत्या० कहलाता है । किये हुए प्रत्याख्यान को भोजन के समय स्मरण करने से कीर्तित (कीर्त्यु) प्रत्याख्यान कहा जाता है ॥४५॥

इअ पडिअरिअं आराहियं तु अहवा छ सुद्धि सद्दहणा;
जाणण विणय-णुभासण, अणुपालण भावसुद्धित्ति ॥४६॥

इस प्रकार पूर्वोक्त की रीत से आचरण किया हुआ (= संपूर्ण किया हुआ) प्रत्याख्यान वह आराध (आराधा हुआ) पच्च० कहलाता है, अथवा दूसरी रीत से भी ६ प्रकार की शुद्धि है, वो इस प्रकार, श्रद्धा शुद्धि - जाणशुद्धि (ज्ञान शुद्धि) - विनय शुद्धि - अनुभाषणशुद्धि - अनुपालन शुद्धि और भाव शुद्धि ये ६ शुद्धि है । ॥४६॥

पच्चक्खाणस्स फलं, इह परलोए य होइ दुविहं तु;
इहलोए धम्मिलाइ दामन्नग माइ परलोए ॥ ४७ ॥

इस लोक का फल और परलोक का फल इस प्रकार प्रत्याख्यान का फल दो प्रकार है । इस लोक में धम्मिलकुमार विगेरे को शुभफल प्राप्त हुआ, और परलोक में दामन्नक विगेरे को शुभ फल प्राप्त हुआ । ॥४७॥

पच्चक्खाणमिणं सेविऊण, भावेण जिणवरुद्दिट्ठं;
पत्ता अणंतजीवा, सासय सुक्खं अणाबाहं ॥ ४८ ॥

श्री जिनेश्वर प्रभु द्वारा कहे गये इस प्रत्याख्यान भाष्य का भाव से आचरण कर अनंत जीवोने पीडारहित मोक्ष सुख को प्राप्त किया ॥४८॥

अथ
श्राद्धवर्यश्रीसरेमल-जवेरचन्द-बेडावाला-परिवार-स्वद्रव्यपरिनिर्मित-श्रीपार्श्वप्रासाद-प्रतिष्ठा-प्रशस्तिः

प्रणम्य परमात्मानं-महावीरं जिनेश्वरम् ।
प्लेटिनमस्थसच्चैत्य-प्रतिष्ठोत्सवमानुषे ॥ १ ॥

साक्षाद्यत्र स्थितः पार्श्वो, मूलशङ्खेश्वरोपमः ।
सूक्ष्मं निरीक्ष्यमाणोऽपि, वर्णावगाहभूषणैः ॥ २ ॥

मुखमुद्राऽपि सैवाऽस्ति, मूलशङ्खेश्वरे यथा ।
गर्भगृहाद्यपि ह्यत्र, मूलशङ्खेश्वरोपमम् ॥ ३ ॥

तद् राजनगरे ह्येष, साक्षात् शङ्खेश्वराधिपः ।
पूजनैर्वन्दनैः स्तोत्रैः, सर्वकामफलप्रदः ॥ ४ ॥

बेडाग्रामीयतीर्थेश-सम्भवसमविग्रहः ।
श्रीसम्भवप्रभुः सम्यक्, सौम्यकान्तिः प्रतिष्ठितः ॥ ५ ॥

तथा श्रीसुमतिस्वामी, राजतेऽत्र जिनेश्वरः ।
सुमतिदानदक्षोऽयं, प्रतिष्ठितः प्रभास्वरः ॥ ६ ॥

शिल्पकला-प्रकर्षोऽत्र, दृश्यते हि पदे पदे ।
चैत्ये रम्यतया साक्षात्, स्वर्गावतार ईक्ष्यते ॥ ७ ॥

चतुर्दशापि स्वप्नानि, मङ्गलान्यष्ट चापि हि ।
द्वारशाखासु राजन्ते, दर्शनाऽऽनन्दनान्यहो ॥ ८ ॥

नर्तकीनां सुनृत्यानि, पाञ्चालिकामिषादिह ।
जिनभक्तिस्वरुपाणि, दृश्यन्ते पावनानि हि ॥ ९ ॥

साक्षात् श्रीअम्बिकादेवी, परिकरादिमण्डिता ।
सरस्वती तथा देवी, देवी पद्मावती तथा ॥ १० ॥

विराजतेऽत्र चैत्ये तु, लक्ष्मीदेव्यपि भासुरा ।
सच्छिल्पमयभावेन, जीवद्रूपस्मृतिप्रदा ॥ ११ ॥

प्रातिहार्यैर्युतं रम्यं, मङ्गलप्रतिमात्रयम् ।
यक्षिणीयक्षमूर्तिश्च, दिक्पालमूर्तिरेव च ॥ १२ ॥

मण्डोवरेऽत्र सच्चैत्ये, द्वादशापि सरस्वती ।
राजते राजतेजोभि-र्जिनसेवापरायणाः ॥ १३ ॥

रूप्यकिङ्किण्य आरम्याः, कलयन्ति कलाऽऽरवम् ।
चैत्यध्वजनिबद्धास्तु, जिनगीतिसुगायिकाः ॥ १४ ॥

श्वेतपुष्पसहस्रैर्हि, महापूजाऽभवद्विभोः ।
शुद्धगोघृतदीपैश्च, सदुद्योतोऽभवन्निशि ॥ १५ ॥

देवविमानयन्त्रेण, पुष्पवृष्टिस्तथाऽद्भुता ।
भूता जनमनःकक्षे, चमत्कारकरी परा ॥ १६ ॥

परमोऽभूज्जगन्नाथ-पञ्चकल्याणकोत्सवः ।
प्रतिदिनं नवैर्नूत्नैः[1], प्रसङ्गैरुपशोभितः ॥ १७ ॥

रथयात्रेह दीक्षाया, निर्गता त्रिजगद्विभोः ।
जनितनयनानन्दै, कुतुकानां शतैः शतैः ॥ १८ ॥

वर्षीदानं विभोर्जातं, रूप्यमुद्रादिकैर्धनैः ।
प्रवरैः सिचयैश्चापि[2], पात्रप्रभृतिभिस्तथा ॥ १९ ॥

सङ्घभोजनभक्तिश्च, जाता द्रव्यैर्वरैरिह ।
प्रवरेण सुभावेन, प्रधानो भाव एव यत् ॥ २० ॥

पञ्चशताधिकास्तत्र, त्रिसहस्रमिता जनाः ।
भुक्तवन्तो महाप्रीति-कारकं प्रीतिभोजनम् ॥ २१ ॥

---

१. अभिनवैः । २. वस्त्रैः ।

अष्टोत्तरीबृहच्छान्ति-स्नात्रमुल्लासपूर्वकम् ।
प्रभोर्जातं मनोवार्धि-समुल्लासनिबन्धनम् ॥ २२ ॥

प्रभोः प्रतिष्ठया सार्धं, प्रतिष्ठितोऽत्र यक्षराट् ।
माणिभद्राभिधो वीरः, तपोगच्छैकरक्षकः ॥ २३ ॥

पद्मावती तथा देवी, जिनाधिष्ठानकारिणी ।
प्रतिष्ठिताऽत्र सच्चैत्ये, भक्तानां शुभदायिनी ॥ २४ ॥

कल्याणकविधी रूप्य-मये पार्श्वेश्वरेऽभवत् ।
पञ्चधातुमयः शान्ति-नाथोऽत्र शुशुभेतराम् ॥ २५ ॥

पञ्चधातुमयं सिद्ध-चक्रं देदीप्यतेतराम् ।
अहो जैनेश्वरं चैत्य-महो भक्तिर्जिनेश्वरे ॥ २६ ॥

चैत्यनिर्मापणे सूरे-रूपदेशोऽभवत् शुभः ।
वैराग्यदेशनादक्ष-हेमचन्द्रप्रभोरिह ॥ २७ ॥

वर्धमानतपोऽब्धेश्च, कल्याणबोधिसद्विभोः ।
सूरेः सत्प्रेरणा जाता, सफलेह न संशयः ॥ २८ ॥

शिल्पशास्त्रपरिज्ञाता, सौम्यरत्नमुनिस्तथा ।
हेतुरत्राभवच्चैत्य-शुद्धताया विशुद्धधीः ॥ २९ ॥

आशींषि गच्छनाथस्य, सिद्धान्तोग्ररुचेरहो ।
ववर्षुः सन्तत सम्यक्, जयघोषविभोरिह ॥ ३० ॥

हेमचन्द्र-गुणरत्न-मुक्तिचन्द्राख्यसूरयः ।
मुनिचन्द्र-रश्मिरत्न-महाबोधिः सुसूरयः ॥ ३१ ॥

कल्याणबोधि-संयमबोधिसूरी तथैव च ।
सत्सान्निध्यं ददुरत्र, शासनैकप्रभावकम् ॥ ३२ ॥

श्रमणश्रमणीवृन्दं, सुविशालमभूदिह ।
प्रभुप्रतिष्ठया कान्ते, कमनीये महोत्सवे ॥ ३३ ॥

मरुधरीयबेडाऽऽख्य-ग्रामनिवासकारकः ।
प्राग्वाटवंशसत्कश्री-विशालगोत्रधारकः ॥ ३४ ॥

परमारोपसंज्ञाऽऽढ्यः, श्राद्धः सरेमलाभिधः ।
भार्याश्रीविमलादेव्या, सह यद्धावमातनोत् ॥ ३५ ॥

सोऽयं जिनालयस्येह, निर्मापणमनोरथः ।
सत्पुत्रैः पूरितः सम्यग्, भक्तानामीदृशी स्थितिः ॥ ३६ ॥

सत्पुत्रो बाबुलालाऽऽख्यो, भरतश्चारविन्दकः ।
रतनदेव्युषा चापि, सङ्गीता पुत्रयोषितः ॥ ३७ ॥

पौत्रादिकलितैरेतैः, स्वद्रव्यपरिनिर्मितम् ।
चैत्यं विजयतादेतन्, निर्मितम् विश्वमङ्गलम् ॥३८ ॥

यावत् सूर्यो विधुर्यावद्, यावदेषा वसुन्धरा ।
प्रतिष्ठा नन्दतादेषा, तावत् कल्याणकारिका ॥ ३९ ॥

मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमप्रभुः ।
मङ्गलं स्थूलभद्राद्या, जैनो धर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥ ४० ॥

इति

श्रीराजनगरीय-शाहीबागस्थानस्थित-
प्लेटिनमहाइट्सजननिवाससङ्कुलविभूषण-
श्राद्धवर्य सरेमल-जवेरचन्द-बेडावाला-परिवार-
स्वद्रव्यनिर्मित-श्रीपार्श्वप्रासादमण्डन-
श्रीशङ्खेश्वरपार्श्वनाथप्रभृतिजिनप्रतिमादिसत्क-
गतिमुनिगगननयन(२०७४)वैक्रमवत्सरीय-
फाल्गुनसितदशमीदिनविहितसत्प्रतिष्ठाप्रशस्तिः ।
शुभं भवतु श्रीसङ्घस्य ।

• • •

अहो ! श्रुतम् स्वाध्याय संग्रह में प्रकाशित होनेवाले हिन्दी ग्रंथो का विवरण

(१) जीवविचार - नवतत्त्व
(२) दंडक - लघु संग्रहणी
(३) भाष्यत्रयम् - चैत्यवंदन / गुरुवंदन / पच्चखाण भाष्य
(४) कर्मग्रंथ १-२-३
(५) ज्ञानसार
(६) उपदेशमाला
(७) अध्यात्मसार
(८) तत्त्वार्थसूत्र
(९) शांतसुधारस
(१०) अध्यात्म कल्पद्रुम
(११) प्रशमरति
(१२) बृहद् संग्रहणी
(१३) लघु क्षेत्र समास
(१४) वैराग्यशतक - इन्द्रिय पराजय शतक
(१५) वीतरागस्तोत्र
(१६) संबोधसितरी - सिंदुर प्रकर

● ● ●

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार परिचय

(1) शा. सरेमल जवेरचंदजी बेडावाला परिवार द्वारा स्वद्रव्य से संवत् 2063 में निर्मित...

(2) गुरुभगवंतो के अभ्यास के लिये 2500 प्रताकार ग्रंथ व 21000 से ज्यादा पुस्तको के संग्रह मे से 28000 से ज्यादा पुस्तके इस्यु की है...

(3) श्रुतरक्षा के लिये 40 हस्तप्रत भंडारो को डिजिटाईजेशन के द्वारा सुरक्षित किया है और उस में संग्रहित 80000 हस्तप्रतो में से 1500 से ज्यादा हस्तप्रतो की झेरोक्ष विद्वान गुरुभगवंतो को संशोधन संपादन के लिये भेजी है...

(4) जीर्ण और प्रायः अप्राप्य 222 मुद्रित ग्रंथो को डिजिटाईजेशन करके मर्यादित नकले पुनः प्रकाशित करके ज्ञानभंडारो को समृद्ध बनाया है...

(5) अहो ! श्रुतज्ञानम् चातुर्मासिक पत्रिका के 42 अंक श्रुतभक्ति के लिये स्वद्रव्य से प्रकाशित किये है...

(6) ई-लायब्रेरी के अंतर्गत 9000 से ज्यादा पुस्तको का डिजिटल संग्रह PDF उपलब्ध है, जिस में से गुरुभगवंतो की जरुरियात के मुताबिक मुद्रित प्रिन्ट नकल भेजते है...

(7) हर साल पूज्य साध्वीजी म.सा. के लिये प्राचीन लिपि (लिप्यंतरण) शीखने का आयोजन...

(8) बच्चों के लिये अंग्रेजी में सचित्र कथाओं को प्रकाशित करने का आयोजन...

(9) अहो ! श्रुतम् ई परिपत्र के द्वारा अद्यावधि अप्रकाशित आठ कृतिओं को प्रकाशित की है...

(10) नेशनल बुक फेर में जैन साहित्य की विशिष्ट प्रस्तुति एवं प्रसार ।

(11) पंचम समिति के विवेकपूर्ण पालन के लिये उचित ज्ञान का प्रसार एवं प्रायोगिक उपाय का आयोजन ।

(12) चतुर्विध संघ उपयोगी प्रियम् के 50 पुस्तको का डिजिटल प्रिन्ट द्वारा प्रकाशन ।

• • •

: ज्ञान द्रव्य से लाभार्थी :

श्री मुनिसुव्रतस्वामी श्वेताम्बर मूर्ति पूजक जैन संघ

210/212, कोकरन बेसिन रोड,
विद्यासागर ओसवाल गार्डन,
कुरूक्कुपेट, चेन्नई 600021

KIRIT GRAPHICS
09898490091